UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178560

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 831 S94P   Accession No. PG H 648

Author सुदर्शन

Title परिवर्तन 1945

This book should be returned on or before the date last marked below.

परिवर्तन

[एक भावपूर्ण और मनोरंजक कहानी]

लेखक

सुदर्शन

Post Graduate Library
College of Arts & Commerce, O. U.

सरस्वती प्रेस बनारस

COPYRIGHT 1944

All Rights Reserved by
SUDARSHAN.

तृतीय संस्करण, जुलाई, १९४४
चतुर्थ संस्करण, दिसम्बर, १९४५
मूल्य—बारह आना।

Printed by—SHRIPATRAI,
at the Saraswati Press, Benares.

१

संध्या का समय था। मैं जहाज़ की छत पर बैठा डूबते हुए सूरज का दृश्य देख रहा था। इतने में किसी आदमी ने मेरे कंधे पर हाथ रख दिया और प्यार से मुस्कराते हुए कहा—"क्षमा कीजिए, मैंने आपके एकान्त में बाधा डाली।"

मैंने पीछे मुड़कर देखा—यह वही था। मेरा दिल ख़ुशी से धड़कने लगा। वह मेरे साथ मार्सेल्ज़ ही से सवार हुआ था। उसके रूप-रङ्ग, आकृति और प्रकृति को देखकर जहाज़ के सारे मुसाफ़िर हैरान थे। सब यही चाहते थे, किसी तरह उस के साथ परिचय हो जाय। मगर वह सारा दिन अलग पड़ा रहता था। उसकी सुन्दर छवि और विचित्र प्रकृति ने वशीकरण मन्त्र के समान मेरे हृदय को प्रेम में बाँध लिया था। सोचता था, अगर किसी तरह इससे परिचय हो जाय, तो मैं सारा दिन इसी के पास बैठा रहूँ। यह मेरी सबसे बड़ी लालसा थी। इँग्लेंड में रहने के कारण पश्चिमी सभ्यता मन में बस गयी थी, नहीं तो भारतीय लोग दिखावे के इतने पाबन्द कभी नहीं हुए। परन्तु यह मनुष्य वस्तुतः ज़्यादा एकान्तवासी और मितभाषी था। न किसी

से मिलता जुलता था, न किसी से हँसता-खेलता था। जहाज़ के दूसरे मुसाफ़िर एक दूसरे के मित्र बन गये थे और रात-दिन एक साथ खेलते रहते थे। मगर वह हमेशा अपने ही कमरे में पड़ा रहता था। वह अँगरेज़ था, परन्तु उसकी पोशाक हिन्दुस्तानियों की सी थी। वह इस पोशाक में देवता-तुल्य मालूम होता था। यह पोशाक मैंने लाखों मनुष्यों के तन पर देखी है, परन्तु उस अँगरेज की सी सुन्दरता मैंने और किसी आदमी में नहीं देखी। मैं आप फ़ैशन का पुजारी हूँ, मगर उस अँगरेज़ की सादगी पर मेरा मन मुग्ध हो गया। उसे देखकर मुझे स्वजातीय सभ्यता पर अभिमान होने लगता था और मैं आनन्द से झूमने लग जाता था। प्रायः अपने साथी मुसाफ़िरों से कहा करता, देखते नहीं हो, उसे हमारी ही चीज़ पसन्द है। परन्तु क्यों पसन्द है ? यह राज़ किसी की भी समझ में न आता था। उससे बातचीत करने की कई बार इच्छा हुई, परन्तु हर बार सभ्यता ने होंठों पर हाथ रख दिये। उस समय मैं इस नाम-मात्र की झूठी सभ्यता पर झुँझला उठता था।

उसे सामने देखा तो मेरा हृदय खिल उठा। मुस्कराकर बोला, "नहीं साहब ! मैं खुद इस एकान्त से घबरा गया था। आपने मुझ पर उपकार किया है।"

उसने मुस्कराकर कहा, "आप कितने मेहरबान हैं ?"

"क्या मैं आपको अपने कमरे में बुला सकता हूँ ?"

बड़ी "ख़ुशी से।"

मैं और वह दोनों कमरे में गये, और बैठकर बातें करने लगे। इस समय मुझ पर एक ऐसा राज़ खुला, जिसकी मुझे कभी आशा न थी। मैंने पूछा, "आप कहाँ जाएँगे ?"

"मुलतान।"

"तो आप वहाँ नौकर होंगे। किस महकमे में ?"

अजनबी ने उत्तर दिया, "वहाँ मेरा घर है।"

'आपका घर ?"

"हाँ मेरा घर। क्या आपको आश्चर्य है ?"

"सचमुच। मैं समझता था, आप पहली बार भारत जा रहे हैं।"

"और आपका विचार ठीक है। मैंने इससे पहले भारत के तट पर कभी पाँव नहीं रखा।"

मेरा आश्चर्य और भी बढ़ गया, जिस प्रकार बादल छा जाने से रात का अँधेरा बढ़ जाता है। मेरा चेहरा प्रत्यक्ष प्रश्न था।

उसने हँसकर कहा, "आप मुझे क्या समझते हैं, अँगरेज़ ?"

मैंने उत्तर दिया, "और कोई कारण नहीं, कि मैं आपको कुछ और समझूँ !"

"मगर आप भूल रहे हैं।"

"तो—"

"मैं हिन्दुस्तानी हूँ।"

मैं अपनी जगह से उछल पड़ा, जैसे कोई अनहोनी बात सुन ली हो। आश्चर्य से बोला, "मैंने शहर शहर का पानी पिया है। मुझे अपने आप पर बहुत भरोसा था। मैं समझता था, कमसे कम जातीयता के विषय में मैं कभी धोखा नहीं खा सकता। मैंने यूरोप के अलग अलग प्रान्तों के निवासियों को पहचानने में कभी भूल नहीं की। मगर यह ख़्याल न था, कि मैं एक हिन्दुस्तानी को भी न पहचान सकूँगा। लज्जा ने मुँह लाल कर दिया।

एकाएक मैंने सिर उठाया, "मगर आपने कहा था, कि आप हिन्दुस्तान में पहली बार जा रहे हैं।"

"हाँ पहली बार।"

"आप हिन्दुस्तान की ज़बान जानते हैं ?"

"नहीं।"

मेरी ज़बान बन्द हो गई, मगर मेरी आँखों में विस्मय भरा था।

थोड़ी देर के बाद मैंने पूछा, "आप हिन्दुस्तानी हैं, परन्तु आपका रंग इतना लाल और सफ़ेद है। आप हिन्दुस्तानी हैं, परन्तु आपने हिन्दुस्तान नहीं देखा। आप हिन्दुस्तानी हैं, मगर आप हिन्दुस्तान की ज़बान नहीं जानते। तो इससे मैं क्या समझूँ ?"

अँगरेज़ ने ठंढी साँस भरी, और कहा, "इस समय न पूछो, किसी अवकाश के समय मैं तुमसे अपनी रामकहानी कहूँगा।"

"नहीं अभी कहो। मेरा मन व्याकुल हो रहा है। जब तक तुम्हारी कहानी न सुन लूँगा, मुझे चैन न आयेगा।"

वह चुप हो गया, शायद सोच रहा था, कि किसी अपरिचित को इतनी जल्दी अपनी आपबीती सुना देना उचित है या नहीं। मुख का रङ्ग इसका साक्षी था। वह कुछ देर चुपचाप बैठा रहा। इस समय उसके हृदय में हल-चल मची हुई थी। उसने क्षमा चाही—कहा, फिर किसी समय कहूँगा, इस समय रहने दो। परन्तु मेरे भारतीय आग्रह ने उसका मुँह बन्द कर दिया। विवश होकर बोला, "तुम पहले आदमी हो, जिसके सामने मैं ये घटनाएँ रखने लगा हूँ। मैं इससे पहले कई आदमियों को टाल चुका हूँ। दिखावे की दो बातें उनका जोश ठण्डा करती रही हैं। परन्तु तुम्हारे हठ के सामने "न" करने को जी नहीं चाहता। मैंने सुना है तुम हिन्दुस्तानी समाचारपत्रों में प्रायः लिखते रहते हो। संभव है, मेरी ज़िन्दगी तुम्हे मनोरंजक मालूम हो और तुम्हें एक कहानी का मज़मून मिल जाये।"

मैं कान लगाकर सुनने लगा। उसने कहाः—

७

ऐ भाई ! मेरे दादा साहब मुलतान के रहनेवाले थे। वहाँ उनके नाम की अब तक पूजा होती है। वह केवल अमीर हों यह बात न थी। वह शराफ़त का सरचशमा थे। मेरे दादा के नाम की सारे मुलतान में धाक बँधी हुई थी। वह जब बाज़ार में निकलते थे तो लोग दर्शन को टूट पड़ते थे। उनके फ़ैसले बिरादरी में प्रामाणिक थे, उनकी हर एक बात पत्थर की लकीर। हमारी बिरादरी में किसी को उनके सामने सिर उठाने का साहस न होता था। कहते हैं, जिस दिन वह मरे थे, उस दिन सारे शहर में हड़ताल थी, और समाचारपत्रों ने शोक-अङ्क प्रकाशित किये थे, उन दिनों मेरे पिता इङ्गलेंड में थे। पिता का मृत्यु-समाचार सुनकर उनका दिल टूट गया। कई दिन तक रोते रहे और मकान से बाहर न निकले। वह वहाँ कारोबारी शिक्षा के लिए गये थे। मेरी माँ ने लिखा—अब लौट आओ। मगर उन्होंने उत्तर दिया, अब वापस आने को जी नहीं चाहता। मेरी माँ गाँव की रहनेवाली थी। वह पढ़ना-लिखना न जानती थी। उसे यह भी पता न था, कि इँग्लेंड कहाँ हैं और वहाँ तक कैसे पहुँच सकते हैं? अपने पति

का पत्र सुनकर उसके हाथों के तोते उड़ गये। परन्तु वह रोने-धोने नहीं बैठ गई। उसने ज़मींदारी का बोझ अपने गुमाश्ते के कन्धों पर रखा और आप विलायत पहुँच गई। प्रेम ने रास्ता दिखा दिया। मेरे पिता को उसके प्रेम और सतीत्व पर पूरा पूरा भरोसा था। मगर उन्हें यह आशा न थी, कि वह इतनी दूर अकेली आ सकती है। परन्तु प्रेम क्या नहीं कर सकता। उसने उन्हें हिन्दुस्तान चलने के लिए बहुत कहा, मगर मेरे पिता को इंग्लैंड की आब-हवा कुछ ऐसी पसन्द आ गई थी, कि वह वापस जाने को तैयार न हुए। उन्होंने लिवरपूल में एक दुकान खोल ली, और वहाँ काम करने लगे। थोड़े ही दिनों में दुकान चमक उठी। रुपया पानी की तरह आने लगा। सम्भव है, अगर आमदनी का कोई वसीला न बनता, तो मेरे पिता भारत को लौट जाते परन्तु दुकान का चल निकलना उनके पाँवों की जंजीर बन गया। उन्होंने भारत जाने का विचार सर्वथा त्याग दिया और ज़मींदारी का काम अपने गुमाश्ते पर छोड़कर वहीं रहने लगे।

ऐ भाई! उन्हीं दिनों में मेरा जन्म हुआ। मेरे माता-पिता के हर्ष का ठिकाना न था। मेरा नाम हरिसेन रखा गया और मुझे बड़े लाड़-प्यार से पाला गया। मैं जब बड़ा हुआ, तो मुझे ज्ञान न था, कि मैं भारतीय हूँ। मैं अपने आपको अँगरेज़ ही समझता था। इस समय मेरी माँ की मृत्यु हो चुकी थी। मेरे पिता और भारत को मिलाये रखने-वाली यही एक कड़ी थी, वह भी टूट गई। अब मेरा पिता सोलहों आने अँगरेज़ था। वह मुझे हरिसेन नहीं किन्तु हैरिसन Harrison कहके बुलाया करता था और अपने आपको कापूर Coupoor कहा करता था। भारतीयता पर अँगरेज़ियत की विजय हो गई थी। आह! मेरी माँ जीती रहती तो मुझे यह दुर्दिन देखना न पड़ता। मैं केवल परदेसी और अनाथ ही न था, बल्कि जातीयता के धन से भी महरूम था। मुझे ज्ञान ही न था, कि मैं भारतीय हूँ। इसी प्रकार अठारह वर्ष

गुज़र गये, और मैं कालिज में भरती हुआ। उस समय मुझे पहली बार मालूम हुआ कि मैं भारतीय हूँ। ऐ भाई! मुझे माफ़ करना, मगर मैं झूठ न बोलूँगा। मुझे इससे गहरी वेदना पहुँची। भारत सम्बन्धी मेरे विचार अच्छे न थे। मैं अपनी आँखों में आप गिर गया। प्रायः सोचता था, मैं कैसा अभागा हूँ, कि भारतीय माता-पिता की सन्तान हूँ। सोने पर पीतल का धोखा होने लगा। मैं अपनी जाति किसी पर प्रकट न करता था। उसे छिपा-छिपाकर रखता था, जैसे सफ़ेद वस्त्र पर धब्बा लग गया हो। अब उन दिनों की याद करता हूँ तो शरीर काँप जाता है और सिर लज्जा से ऊँचा नहीं उठता। मगर उस समय यह बात न थी।। जब कभी विचार आता, कि मैं भारतीय हूँ तो कलेजा फट जाता था, जैसे किसी कुरूप आदमी के सामने शीशा आ जाये तो वह शरमिन्दा हो जाता है—मैं अपना नाम हैरिसन कापर ही बताता था। हस्ताक्षर करता तो H. Coupoor लिखता। मेरे मित्रों में से किसी को पता न था कि मैं भारतीय हूँ, न मैं यह प्रकट करना चाहता था। मेरे ख़याल में भारतीय होना और जुरायमपेशा होना एक ही बात थी। जब कभी कोई भारतीय जैन्टलमैन हमारी दुकान पर आ जाता तो मैं उसकी ओर घूर घूरकर देखता रहता था, और सोचता था, कि इसमें और मुझमें कौन कौन सी बात मिलती है। रंग, ढंग, आँखे, चाल, बातचीत करने का ढंग सब अलग अलग थे। तब मुझे चैन आ जाता, जैसे कोई मुक़द्दमा जीतकर शान्ति की साँस लेता है। मगर जब यह ख़याल आता, कि किसी दिन संभव है, मेरी जाति लोगों पर प्रकट हो जाय तो मेरे हृदय पर बोझ सा पड़ जाता था और मैं भाग्य को गाँलियाँ दे डालता था। आख़िर एक दिन वही हुआ, जिसका खटका था। मेरी जाति का कालिज के दूसरे लड़कों को पता लग गया। सन्ध्या का समय था। मैं अपने एक मित्र के यहाँ चाय पीने गया। उसने मुझे देखते ही कहा, "हैलो! आज एक नई बात मालूम हुई।"

मुझे कुछ कुछ सन्देह हुआ, घबराकर बोला, "क्या ?"

"पर मुझे विश्वास नहीं होता।"

"तुम पहले वह बातें तो बताओ।"

"गुस्सा तो नहीं करोगे ?"

"नहीं।"

मगर हृदय में आग लगी हुई थी।

उसने रुक-रुककर कहा, "तुम मिस्टर ई क्रास को जानते हो ?"

"बड़ी अच्छी तरह जानता हूँ।"

"वह आज कालिज में कह रहा था, कि तुम हिन्दुस्तानी हो। क्या यह सच है ?"

मेरी आँखों से आग के चिंगारे निकलने लगे। ऐसा मालूम होता था जैसे किसी ने मेरे सामने मेरा अपमान कर दिया है। अगर उस समय मेरे हाथ में पिस्तौल होता, और क्रास सामने आ जाता, तो मैं उसको वहीं पर ढेर कर देता। मैंने कितना प्रयत्न किया था, कितना सावधान रहा था। सब पर पानी फिर गया—मेरी जाति अब एक खुला हुआ राज़ था।

मगर मैंने साहस के साथ उत्तर दिया, "वह रास्कल झूठ बोलता है। इसका नतीजा उसे भुगतना पड़ेगा।"

कहने को तो यह कह दिया, मगर दिल में शान्ति न थी। दूसरे दिन कालिज जाते समय लज्जा आने लगी, जैसे मुझसे कोई अपराध हो गया हो। मैंने पढ़ना छोड़ दिया, और दुकान पर काम करने लगा। दूसरे साल मेरे पिता की भी मृत्यु हो गई।

अब अपनी दुकान का मैं ही मालिक था। सब स्याह-सफ़ेद मेरे ही हाथ में था। जो चाहूँ, करूँ, जो चाहूँ, बनाऊँ; कोई पूछनेवाला न था। मैं ख़ूब खुल खेला।

३

ऐ भाई ! मैंने जी खोलकर दुनिया की बहार लूटी। रुपया, रूप, यौवन, संसार-वाटिका के यह तीन ही मीठे फल हैं, मेरे पास तीनों थे। मैं अपनी तारीफ नहीं करता। मगर यह कहे बिना न रहूँगा कि मैं साधारण अँगरेज़ों से ज्याद सुन्दर हूँ। कमसे कम लोग ऐसा ही समझते हैं। मुझमें रङ्ग की विशेषता नहीं, हर एक अँगरेज का रङ्ग सफेद है। मगर मुझ जैसे भारतीय नक्श अँगरेज़ों में कहां हैं? उन्होंने कई स्त्रियों का सर्वनाश कर दिया। मैं उनके हृदयों से खेलता था, उनसे हँसता था, मगर सभ्यता की मर्य्यादा का कभी उल्लंघन नहीं किया। यहाँ तक कि एक लड़की स्टीला ने अपनी सुन्दरता की सम्पूर्ण शक्ति से मुझ पर आक्रमण किया। यह लड़की लड़की न थी, क़ाफ की परी थी। उसका रूप मन को मोह लेनेवाला था। वह साधारण अँगरेज़ लड़कियों की नाईं ओछी न थी, न बात-बात में दाँत निकाल-निकालकर खलखिला उठती थी। वह सिर्फ़ मुस्कराती थी। मेरा मन लट्टू हो गया।

स्टीला मेरी दुकान पर प्रायः आने-जाने लगी। मैं उसे सबसे पहले Attend करता था, और यत्न करता था, कि उसे मेरी दुकान पर

अधिक समय तक रुकना पड़े। मैं उसकी तरफ़ इस तरह देखता था जैसे अबोध बालक खूबसूरत खिलौने की ओर देखता है। यह प्रेम-कथा का पहला परिच्छेद था, जो बहुत जल्द समाप्त हो गया। इसके बाद हम एक दूसरे से स्वतंत्रता से मिलने लगे। अब अगर वह एक दिन भी न आती, तो मैं अधीर हो जाता था, जैसे शराबी शराब न मिलने से अधीर हो जाता है। मैं उसकी प्रतीक्षा में कई कई घण्टे दरवाज़े पर खड़ा रहता था। ऐसी श्रद्धा से किसी भक्त ने अपने आराध्य देव की भी आराधना न की होगी और यह केवल मेरी ही दशा न थी, उसका भी यही हाल था। मुझे देखकर उसके मुखमंडल पर ज्योति आ जाती थी, आँखों में चमक। प्रायः कहा करती थी, कि "तुम्हारे बिना मुझे चैन नहीं आता। घर जाती हूँ तो खोई रहती हूँ। तुम यहाँ दुकान पर बैठे काम करते हो, मैं घर में बैठी आँसू बहाती हूँ। मेरी अवस्था देखनी हो तो मछली को गर्म रेत पर रखकर देख लो, ठीक उसी तरह तड़पती हूँ।"

मैं यह सुनता तो स्वर्ग में पहुँच जाता, मुझे ऐसा मालूम होता था कि संसार के सारे सुख मेरे ही लिए बने हैं और मुझ-सा भाग्यशाली आदमी संसार भर में न होगा। ऐ भाई! आज वह जादू टूट चुका है, परन्तु अब भी मेरा यही विचार है, कि स्टीला सी सुन्दरी मैंने आज तक नहीं देखी। अप्सराओं की कहानियाँ मैंने पुस्तकों में पढ़ी थीं। उनका दिल लूट लेनेवाला सौन्दर्य्य चित्रों में देखा था। उनके हृदय को चुरा लेनेवाले कटाक्ष नाटकों में देखे थे। मगर यह विचार न था, कि वह सच-मुच इस संसार में होती हैं। स्टीला ने मेरा ख्याल बदल दिया। उस पर शहर के बीसियों लखपती जान देते थे, मगर वह किसी की ओर आँख उठाकर भी देखना पसन्द न करती थी। इस विचार से मैं मत-वालों की नाईं झूमने लग जाता था।

दिसम्बर का महीना था। स्टीला क्रिसमस के लिए कपड़े और आभू-

षण बनवा रही थी। वह अपनी हर एक चीज़ मुझे दिखाती थी और ख़ुश होती थी। इसके बिना वह रह नहीं सकती थी। कमसे कम मेरा यही विचार था। मैंने सोचा, मुझे भी कोई उपहार देना चाहिए। मगर क्या उपहार दूँ? मैं सोच में पड़ गया। कई दिनों तक सोचता रहा, अन्त में मैंने एक मोतियों का हार पसन्द किया। यह हार इतना सुन्दर था कि मैं ज़मीन से उछल पड़ा। मगर मूल्य सुना तो कलेजा बैठ गया, एक सौ बीस पौण्ड। मैंने उसे हाथ से रख दिया, और दूसरे हार देखने लगा। परन्तु उनमें से कोई भी आँखों को न जँचा। आख़िर रुपये पर प्रेम की जीत हो गई। मैंने हार ख़रीद लिया और स्टीला की भेंट कर दिया। उसे देखकर स्टीला गर्व से झूमने लगी, और फिर मेरी तरफ़ देखकर बोली, "क्या मैं तुम्हारा धन्यवाद करूँ?"

"नहीं इसकी कोई ज़रूरत नहीं।"

"अच्छा, इसकी क़ीमत क्या है?"

"तुम्हारी प्रेम-दृष्टि।"

"नहीं। सच सच कहो।"

"इसे क्रिसमस के दिन पहनना। इसकी यही क़ीमत है।"

स्टीला प्रेम के जोश में अधीर होकर मुझसे चिमट गई। इस समय उसका प्यार कैसा सच्चा मालूम होता था। मुझ पर जादू हो गया। मैंने इस समय तक अपने आपको संयम में रखा हुआ था, मगर इस समय हृदय वश में न रहा। मैं पागल हो गया।

मैंने स्टीला के दोनों सुकोमल हाथ अपने हाथों में ले लिये, और प्रेम के दफ़्तर खोल दिये। यह मेरे भाग्य की परीक्षा थी। मुझे कभी लेकचर देने का अवसर नहीं मिला, मगर उस समय मेरे एक एक शब्द पर लालित्य निछावर हो रहा था। यह लालित्य स्टीला के हृदय पर बैठा गया। मैंने उसके सामने ब्याह का प्रस्ताव रखा। उसने इसका उत्तर न दिया, केवल मुस्कराकर मेरी ओर देखा और गरदन झुका ली।

मेरे आनन्द का ठिकाना न रहा। मुझे जवाब मिल गया। मैं परीक्षा में पास हो गया था।

क्रिसमस का दिन था, संध्या का समय। लोग उपहारों से लदे हुए अपने अपने घरों को जा रहे थे। इस समय उनके मुख पर कैसी मुस्कराहट थी, नेत्रों में कैसी प्रसन्नता। ऐसा जान पड़ता था, मानों आज संसार से दुख-दारिद्रय का नाम तक उठ गया है। मगर मेरा मन उदास था। स्टीला अभी तक न आई थी। मैं प्रतीक्षा की मूर्ति बन रहा था। मेरी आँखें दरवाज़े में लोट रही थी। मगर उसका कहीं पता न था। मैं बार बार झुँझला उठता था। सोचता था, उसे मेरी ज़रा भी परवा नहीं, नहीं तो इतनी देर न करती। इरादा किया, अब उससे बात न करूँगा। एकाएक किसी के पाँव की चाप सुनाई दी। हताश हृदय धड़कने लगा, आँखें दौड़कर दरवाज़े में खड़ी हो गईं। देखा, यह वही थी, परन्तु कितनी उदास और भग्नहृदय—चेहरा दुःख और निराशा की मूर्ति बना हुआ था।

मेरा क्रोध पानी हो गया। प्रेम इस दृश्य को देख नहीं सकता था। मैंने दौड़कर उसको सहारा दिया, और घबराये हुए कहा, "स्टीला!"

स्टीला ने उत्तर न दिया, परन्तु उसकी आँखों में आँसू आ गये।

"हैरानी है? तुम आज मेरे पास आकर रो रही हो। बोलो, क्या बात है?"

स्टीला फिर भी चुप रही।

मैंने कहा, "तुम्हारी यह चुप्पी मेरा गला घोट देगी। बाताती क्यां नहीं, क्या बात है?"

स्टीला ने ठण्डी साँस भरी और बोली, "क्या बताऊँ, मुँह नहीं खुलता, तुम्हारा हार गुम हो गया।"

———

४

ऐ भाई ! मेरे हृदय पर जैसे किसी ने गर्म लोहा रख दिया। यह हार कैसा सुन्दर था, कितना क़ीमती। मैं दिन गिन रहा था, कि क्रिसमस कब आये और कब स्टीला उसे पहने। मैं मन में सोच रहा था, कि जब वह उसे गले में पहनेगी तो कैसी सुन्दरी देख पड़ेगी। क्या-क्या कामनाएँ थीं, क्या-क्या उमंगे, सब पर पानी फिर गया। मैंने शोक से गरदन झुका ली। मेरी इस उदासी से स्टीला का उदास चेहरा और भी उदास हो गया। आँखों के आँसू गालों पर बहने लगे।

मैंने कहा, "अब रोने से क्या होगा। चला गया है, चला जाने दा। नुक़सान भी तो होते ही रहते हैं।"

यह शब्द स्टीला की सिस्कियों में इस तरह डूब गये, जैसे लोहे के हल्के-हल्के कील नदी में डूब जाते हैं। उसके अश्रु-प्रवाह में कोई अन्तर न आया। यह देखकर मेरा हृदय व्याकुल हो गया। मैंने उसके निकट जाकर उसे धीरज देने का प्रयत्न किया, परन्तु उस पर कुछ असर न हुआ। स्त्री आभूषणों की हानि को सहन नही कर सकती। मैं उसी समय बाज़ार गया, और उसी तरह का एक और हार ख़रीद

लाया। स्टीला के घावों पर मरहम लग गया। उसके बहते हुए आँसू रुक गये। मेरे हृदय को शान्ति मिली। जैसे डूबती हुई नाव को किनारा मिल जाता है।

इसके बाद रास्ता खुल गया। स्टीला मुझ से बढ़िया-बढ़िया चीज़ें माँगने लगी। पहले-पहल मैं इससे खुश हुआ। मैं समझता था, वह मुझ पर उपकार कर रही है। परन्तु बाद में वे उपकार अपकार हो गये। हम दिन को समुद्र की सैर करते, रात को थियेटर देखने जाते। दुकान की ओर ज़रा ध्यान न रहा। होते-होते नौबत यहाँ तक पहुँची कि बिक्री कम हो गई। मगर मैंने फिर भी परवा न की और अपने पश्चिमी दिल-बहलाव में डूबा रहा, यहाँ तक कि दुकान का दीवाला निकल गया और मेरा सर्वनाश हो गया। अब मुझे स्टीला की आँखें कुछ-कुछ बदली हुई मालूम हुईं। मगर मैंने यह कहकर दिल को तसल्ली दे ली, कि यह मेरा भ्रम है। मैंने बालू की भीत खड़ी की।

रात का समय था। मैं और स्टीला नाटक देख रहे थे। एकाएक दर्शकों में हलचल मच गई। आर्डर-आर्डर की आवाज़ें सुनाई दीं, मगर कुछ असर न हुआ। तमाशे में कुछ भारतीय विद्यार्थी आ गये थे। उनमें और अँगरेज़ों में झगड़ा हो गया। इतने में किसी ने कहा—हिन्दुस्तानी सूअरों को मारो। मैं नहीं जानता, उस समय मुझे क्या हो गया। मैं उस समय अपने आपे में न था। मुझ पर एक पागलपन-सा सवार हो गया। मैं जोश से आगे बढ़ा, और उस स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ अँगरेज़ भारतीय छात्रों को मारपीट रहे थे। मैं नहीं कह सकता मेरे हाथों में कहाँ से बल आ गया था। मैं भीड़ को चीरता हुआ निकल गया और भारतीय विद्यार्थियों की तरफ़ से लड़ने लगा। भारतीय विद्यार्थी पीछे हट रहे थे, मुझे अपनी तरफ़ से लड़ते देखकर उनके उखड़ते हुए पाँव जम गये और वे डटकर लड़ने लगे। मैं उनको उत्तेजना दे रहा था, कि इतने में मेरे सिर पर एक लट्ठ पड़ा और मैं बेहोश होकर गिर पड़ा।

जब मुझे सुध आई तो मैंने अपने आपको अस्पताल में पाया। मगर घाव साधारण था, दो-चार दिन में ठीक हो गया। अब मुक़द्मा पेश हुआ। मेरे बयान से अदालत में सनसनी फैल गई। किसे कल्पना हो सकती थी, कि मेरे जैसा आदमी हिन्दुस्तानी हो सकेगा। लोग काना-फूसियाँ करने लगे। भारतीय विद्यार्थी मेरी ओर इस तरह देखते थे मानों मैं उनका इष्ट देवता हूँ। परन्तु मुझे इस पर आश्चर्य न था। आश्चर्य इस बात पर था, कि स्टीला ने मेरी ओर से सफाई की गवाही देना स्वीकार न किया। क्या आश्चर्य की बात न थी, कि जिस स्त्री के लिए मैंने अपना कारोबार नष्ट कर दिया, अपनी बनी हुई आजीविका का नाश कर दिया, जिसकी खातिर मैंने अपना जीवन और उसके भविष्य का विचार न किया, वही स्त्री मेरे लिए दो शब्द कहने के लिए भी तैयार न हुई। बालू की भीत गिर गई।

उस समय वह अदालत में थी। उसने मेरी तरफ देखा, मगर इस तरह जैसे वह कोई आकाश से उतरी हुई परी थी और मैं पृथ्वी पर रेंगनेवाला तुच्छ कीड़ा। मैं सन्नाटे में आ गया। उसकी आँखों में उस समय अभिमान बैठा था। इस अभिमान में वह पहला प्रेम कहीं नज़र न आता था।

मुक़द्मे का फ़ैसला हुआ, तो लोग दंग रह गये। मुझे दस दिन क़ैद की सज़ा मिली। समाचार-पत्रों में शोर मच गया, मगर मुझे परवा न थी। क़ैद से छूटा तो भारतीय छात्रों ने मेरा जुलूस निकाला, और मुझे मान-पत्र दिया, साथ ही एक थैली (Purse) भी भेंट की। इस मान-पत्र से मेरा मस्तिष्क आकाश पर पहुँच गया। सोचता था, मैं कैसा भाग्यशाली हूँ, जो भारतीय हूँ। अँगरेज़ कई वर्ष बना रहा, किसी ने परवा न की। भारतीय एक दिन बना, एड्रेस मिलने लगे। मगर मुझे सबसे अधिक दुःख स्टीला के दुर्व्यवहार पर था। कैसी कृतघ्न और हृदयहीन औरत है। मैंने उस पर अपना सब कुछ निछावर कर दिया।

मुझे यह सुपने में भी विचार न था कि वह समय पर आँखें बदल लेगी। उस दिन मुझे अपनी भारतीयता पर अभिमान होने लगा। शाम को जब डेली हैरल्ड का संवाददाता मुझसे इंटरव्यू (Interview) करने आया, तो मैंने बड़े गौरव से कहा—"हाँ! मैं हिन्दुतानी हूँ, और परमात्मा का धन्यवाद है, कि मैं और कुछ नहीं हूँ।" संवाददाता ने पूछा—"आपका अँगरेज़ी अदालतों के सम्बन्ध में क्या विचार है?"

मैंने उत्तर दिया, "यदि मैं अपनी जाति को प्रकट न करता, तो मेरा विचार है, फ़ैसला बिलकुल उलटा होता। मगर जो सुख मुझे इस दण्ड से मिला है, वह छूट जाने से कभी न मिलता। दोष एकमात्र अँगरेज़ दल का था। भारतीय सर्वथा निर्दोष थे।"

"आपने इस फ़साद में क्यों हिस्सा लिया?"

"यह स्वाभाविक था। मैं रह नहीं सकता था।"

"पर क्यों!"

"मेरा लहू जोश मारने लगा था।"

"तो आपने हुजूम पर हमला किया?"

"जी नहीं। मैं फ़साद रोकना चाहता था, हुजूम ने मुझ पर हमला किया और मैं ही घायल हुआ। हर एक आदमी जो इस हुजूम में शामिल था, मेरे साथ इस विचार में सहमत होगा, कि मुझे दण्ड देना केवल अपनी जाति का पक्षपात करना था। अगर मैं अंगरेज़ होता, तो मुझे कभी सज़ा न मिलती, बल्कि मेरा ख़याल है, मुझे इनाम मिलता, मेरी तारीफ होती, मेरे लेक्चर कराए जाते। मगर मैं हिन्दुस्तानी था, मैंने हिन्दुस्तानियों की हिमायत की थी,—मुझे सजा मिली। अगर अदालत मुझे सजा न देती, तो अदालत की इज़्ज़त बढ़ जाती।"

इस इंटरव्यू का समाचार-पत्रों में कई महीने शोर मचा रहा।

———

५

ऐ भाई ! मेरी दुकान का दिवाला निकल गया था, मगर मुझे भूखों नहीं मरना पड़ा। मेरा मित्रमण्डल बहुत विस्तृत था। मैंने उनके सामने रुपये पैसे का कभी मुँह न देखा था। मेरे इस संकट के समय वह उदारता काम आ रही थी। जिस मित्र से जो चाहता था, माँग लेता था, कोई "न" नहीं करता था। इसी तरह कुछ महीने बीत गये। इसके बाद सुहृद्-मित्र भी मुँह फेरने लगे। अब वे मुझे आता देखते तो कतराकर एक तरफ़ हो जाते। मैं बुलाता था तो उन्हें आवाज़ सुनाई न देती थी। यहाँ तक कि मुझे तीन दिन निराहार बीत गये। जी चाहता था, किसी से कुछ माँग लूँ, मगर आत्म-सम्मान हाथों को आगे न बढ़ने देता था। मैंने निश्चय किया, कि अब किसी से कुछ न माँगूँगा। ऐश्वर्य्य लुट चुका था, उसकी शान बाक़ी थी। मैंने भारत को सामुद्रिक-तार (Cablegram) भेजा था, और अपनी ज़मीन के गुमाश्ते से रुपया माँगा था। इस समय उसी की बाट देख रहा था।

दोपहर का समय था, मैं अपने कमरे के बाहर खड़ा सोच रहा था, कि आज का दिन कैसे कटेगा ? इतने में पोस्टमैन आता दिखाई दिया।

मेरा कलेजा धड़कने लगा। विचार आया, क्या संभव है, कि मेरा कोई मनी-आर्डर आया हो; कोई बीमा, कोई रजिस्टरी, कोई पत्र। इस विचार से चित्त प्रफुल्लित हो गया, जैसे वसंत के झोंको से फूल ताज़ा हो जाते हैं। परन्तु दूसरे विचार से हृदय पर फिर निराशा छा गई, जैसे फूल गरम लू से मुरझा जाते हैं। मगर नहीं, आशा सामने खड़ी थी। पोस्टमैन मेरे सामने आकर रुका, और एक पत्र मेरे हाथ में देकर आगे निकल गया। मैंने पत्र खोलकर पढ़ा, तो हर्ष से उछल पड़ा। यह मेरे मुलतान के गुमाश्ते का पत्र था। उसने सूचना दी थी, कि आठ दिन हुए आपके हिसाब में आठ सौ पौण्ड ईस्टर्न बैंक को भेज दिये गये हैं। मैं इस समाचार से ऐसा प्रसन्न हुआ, मानों डरबी की लाटरी जीत ली है। मुँह कानों तक लाल हो गया। पास से एक गाड़ी (Taxi) जा रही थी, मैं उचककर उसपर सवार हो गया, और बोला, "ईस्टर्न बैंक को ले चलो।"

वहाँ जाकर मैंने कुछ रुपया निकलवाया, और एक होटल में पहुँचा। पेट में चूहे दौड़ रहे थे। उस समय मैं खाने पर इस तरह टूटा, जैसे बर्फ़ानी इलाकों में भूखे भेड़िये घोड़ों पर टूटते हैं। बाहर निकला तो आँखों में फिर वही अभिमान था, मुख पर फिर वही निश्चिन्तता। इतने में देखा, सामने से स्टीला आ रही है, मगर उसकी हालत में आकाश-पाताल का अन्तर पड़ गया था। न आँखों में वह चमक थी, न होंठों पर वह मुस्कराहट। रंग शिशिर-ऋतु के वृक्षों की नाईं पीला हो गया था। कौन कह सकता था, कि यह स्त्री कभी सारे लिवरपूल की सुन्दरियों की रानी होगी। मेरी-आँखों में आँसू भर आये। मैंने पश्चिमी सभ्यता को एक ओर रखा और आगे बढ़कर कहा, "क्यों? तुम्हें क्या हुआ है?"

स्टीला ने अपनी आँखें मेरी ओर उठाईं, परन्तु उनमें वह लावण्य, वह तेज, वह आकर्षण न था। तब हम दोनों की आँखें मिलीं, पर

उस पुराने प्रेम-भाव से नहीं। एक में अभिमान भरा हुआ था, दूसरी में नैतिक-पतन के भाव छिपे हुए थे। स्टीला के मुँह से बात न निकलती थी। उसने केवल इतना कहा, "ख़ुदा के लिए मेरी मदद करो।" और रोने लगी।

मैंने अधिक पूछना उचित न समझा। ग़रीबी से अधिक दुःखदायी ग़रीबी का विज्ञापन है। मनुष्य दरिद्रता से नहीं डरता, परन्तु उसके प्रकट करने से उसका कलेजा फटने लगता है। मैंने चेक-बुक निकाली और आठ पौण्ड का चेक काटकर स्टीला के हाथ में दे दिया।

शायद स्टीला को मुझसे यह आशा न थी। उसने मेरी ओर इस तरह देखा जिस तरह सहमा हुआ अपराधी बालक अपने ऊपर उपकार करनेवाले की ओर देखता है, और धीरे धीरे चली गई। मैं अपने मकान पर पहुँचा और कौच पर लेटकर सिगार पीने लगा। कोई एक घण्टा बीता होगा कि कमरे का दरवाज़ा खुला और बैंक का एक कर्मचारी स्टीला को साथ लिये हुए अन्दर आया। उसने आते ही स्टीला का चेक मेरे हाथ में दे दिया, और पूछा, "क्या यह चेक ठीक है?"

मेरा कलेजा धक धक करने लगा। चेक में आठ के अस्सी पौण्ड बनाये हुए थे।❀ ऐ भाई! अगर मैं चाहता तो उसी समय स्टीला को गिरफ्तार करा सकता था। उसका अपराध साधारण न था। वह दण्ड से बच न सकती थी। उसकी रुखाई मेरी आँखों के सामने फिर गई। मेरे हृदय में पैशाचिक हर्ष की गुदगुदी होने लगी।

परन्तु फिर विचार आया, यह फिर भी स्त्री है, स्त्री का हृदय दुर्बल होता है, विचार छोटे। पता नहीं, किन कारणों से इसने मेरे साथ विश्वासघात किया। वह इस समय अत्यन्त दुखिया मालूम होती है।

❀ आठ के आगे 0 लिख देना बहुत आसान है। इसी तरह EIGHT का EIGHTY बना लेना भी कठिन नहीं।

उसका मुँह आँसुओं से भीगा हुआ था। ज़रूर उसपर कोई मुसीबत टूटी है। नहीं तो ऐसा अपराध करने का कभी साहस न करती। मरे को मारना कहाँ की वीरता है। मैंने उसकी ओर भाव-भरी आँखों से देखा। वह भरे पिस्तौल के सामने खड़े हुए घोड़े की नाईं काँप रही थी। उसने मुँह से कुछ न कहा, परन्तु आँखों ने भाव के दफ्तर खोल दिये। ऐसा मालूम होता था कह रही है, "मैंने तुमसे धोखा किया, परन्तु कभी तुम्हारी थी। क्या तुम मेरी लाज न रखोगे।"

इन आँखों ने मेरे इरादों को अस्तव्यस्त कर दिया। बदले का विचार ओछा प्रतीत होने लगा। मैंने चेक से आँख उठाकर बैंक के कर्मचारी की ओर देखा और कहा, "हाँ यह ठीक है।"

"परन्तु—"

"तुम्हारी सावधानी सराहनीय है। मैंने पहले आठ पौण्ड लिखे थे, पीछे अस्सी बना दिये। लाओ हस्ताक्षर कर दूँ। मुझे शोक है, इस बेचारी लेडी को इतना कष्ट उठाना पड़ा।"

और यह कहते कहते मैंने जहाँ जहाँ पीछे अक्षर बढ़ाये गये थे, वहाँ पर अपने हस्ताक्षर कर दिये।

६

दूसरे दिन मुझे एक भारतीय सज्जन मिलने आये। उनके साथ उनकी स्त्री भी थी। पति का नाम रूपचन्द था, स्त्री का देवकी। दोनों सभ्य और मिलनसार थे। उनसे मिलकर चित्त प्रसन्न हो गया। देवकी बहुत ही सुन्दर थी। उसने भारतीय फ़ैशन की साड़ी पहनी हुई थी। इस वेष ने उसकी सुन्दरता को पर लगा दिये थे। उसके तन पर न आभूषण थे, न मुख पर पौडर। परन्तु उसको देखकर हृदय पर रोब छा जाता था। वह इस मर्त्यलोक की मालूम न होती थी। उसकी आँखों में भोलापन था, मुँह पर सरलता। बातें करती थी तो मुख से फूल झड़ते थे। वह न सिर हिलाती थी, न आँखें मटकाती थी। मगर फिर भी उसकी एक-एक अदा में जादू था। मगर इस जादू में उत्पात और उपद्रव न था। यह वह जादू था, जो शायद सौन्दर्य्य के जादू से भी अधिक प्रभावशाली होता है। यह आत्म-गौरव और सतीत्व का जादू था। मुझे उस दिन पहली बार मालूम हुआ कि भारतीय सौन्दर्य्य के सामने पश्चिमी सुन्दरता कितनी फीकी और तुच्छ है। मगर इस सुन्दरता से कहीं अधिक वह लज्जा थी जो मुझे देवकी के मुख पर

दिखाई दी। मेरी दृष्टि उसके पैरों में लोटने लगी। उसे मुख पर उठने का साहस न होता था। वह कुछ घंटे मेरे पास ठहरे। अनेक विषयों पर बातचीत होती रही। तब मुझे मालूम हुआ कि देवकी कितनी सुयोग्य और मेधावी है। मैंने जिस विषय पर बात छेड़ी उसने मेरा मुँह बन्द कर दिया। मैं छटपटाकर रह गया। उस समय विचार आया, क्या यही स्त्रियाँ हैं, जिनके सम्बन्ध में कहा जाता है, कि उनको किसी भी बात का सलीका नहीं। अगर उनको शिक्षा नहीं दी जाती, अगर उनके सभ्य बनाने का यत्न नहीं किया जाता, तो क्या यह उनका दोष है ?

वह जाने के लिए तैयार हुए तो मैं उदास-सा हो गया। मुझपर किसी ने जादू नहीं किया, टोना नहीं किया, परन्तु मेरा हृदय बस में न था। मैंने भूमि की ओर देखते हुए रुक-रुककर कहा—मुझे आशा है, आप अब प्रायः यहाँ आते रहेंगे ?

इसके उत्तर में रूपचन्द केवल मुस्कराये। उन्होंने कोई उत्तर न दिया। परन्तु देवकी ने धीरे से कहा—तुम्हें भारतीय बनाने के लिए।

कैसी ज़बरदस्त चोट थी, कैसा सूक्ष्म व्यङ्ग्य। मेरे दिल में उथल-पुथल होने लगी। सोचने लगा, कैसी मूर्खता की, जो आज तक भारतीयों से घृणा करता रहा। यदि मुझे पहले पता होता, कि वे ऐसे हँसमुख, ऐसे सभ्य, ऐसे मिलनसार हैं, तो अपनी जाति पर क्यों लज्जित होता। इस कुछ घंटों की भेंट से मेरे विचारों में परिवर्तन आ गया। मैंने निश्चय किया कि अब स्टीला का विचार छोड़ दूँगा और रूपचन्द और देवकी के साथ भारत लौट जाऊँगा।

आठ दिन बीत गये। हमारा मेल-जोल बढ़ने लगा। अब देवकी और रूपचन्द हर रोज़ सन्ध्या समय आते और डेढ़-डेढ़ दो-दो घंटे मेरे पास ठहरते थे। उनकी बातों में समय उड़ता मालूम होता था। जी चाहता

था, घड़ी की सुइयाँ खड़ी हो जायें। परन्तु काल की गति को किसने रोका है ? जब वे मुझसे भारतीय गार्हस्थ्य जीवन का वर्णन करते थे, तो मेरी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग जाती थी। मैं कहता था, मालूम होता है, कहानियाँ सुना रहे हो। देवकी मुस्कराकर उत्तर देती, तुमने पश्चिम में जन्म लिया है, पश्चिम में पले हो। यहाँ माया का राज है। तुम्हें क्या मालूम कि भारतीय आध्यात्मिकता कैसी उच्च और श्रेयस्कर है। वहाँ एक बार जाकर देखो तो तुम्हारी आँखें खुल जायें। वहाँ से वापस न आ सकोगे। तुमने पश्चिमी स्त्रियाँ देखी हैं, जिन्हें अपने बनाव-सिंगार ही से फ़ुरसत नहीं मिलती। वे इसे ही जीवन का आदर्श समझती हैं। इससे परे जाना उनके लिए असंभव है। परन्तु भारतीय महिला प्रेम का दूसरा नाम है। वह अपने पति की इस तरह पूजा करती है, मानों वह उसका परमात्मा है। वह उस पर तन-मन-धन सब कुछ निछावर कर देती है। अगर संसार भर की विवाहिता नारियों को एकबारगी स्वतन्त्र कर दिया जाये और उनसे कहा जाये कि अब फिर से अपने अपने लिए पति चुन लो, तो मुझे विश्वास है, केवल भारतीय रमणी ही ऐसी निकलेगी जो अपने पहले ही पति की तरफ़ दौड़ेगी। वहाँ हम पति-पत्नी-संबंध को सांसारिक-संबंध नहीं समझते। हम इसे आत्मिक संबंध समझते हैं, जो मौत के बाद भी नहीं टूटता। यही कारण है, कि हमारे देश में हज़ारों और लाखों वर्ष के पतन और दासत्व के होते हुए भी प्रेम और पवित्रता के, त्याग और तपस्या के, सतीत्व और सदाचार के ऐसे उच्च और आश्चर्य-जनक उदाहरण देख पड़ते हैं, कि सीता और सावित्री की याद ताज़ा हो जाती है। और हमारा सिर अभिमान से ऊँचा उठ जाता है। हमें भी गर्व होता है कि हमारे पास भी कुछ है। और जो कुछ हमारे पास है, वह बाक़ी सारी दुनिया के पास नहीं है।

इन बातों से मेरे हृदय में अपनी जन्मभूमि का प्रेम जाग उठा।

मैं मन में सोचता था, क्या सचमुच भारतवर्ष ऐसा ऊँचे दरजे का देश है। कभी कभी हृदय चञ्चल हो जाता था। मैं चाहता था, पंख मिलें, तो उड़कर भारत की भूमि में पहुँच जाऊँ, और देवकी के कथन को परीक्षा की कसौटी पर परखकर देखूँ।

७

ऐ भाई ! इस घटना को दो सप्ताह और बीत गये । मैं उदास और दुखी रहने लगा था । अब लिवरपूल के बाज़ारों में और समुद्र के किनारों पर घूमने को जी न चाहता था । हृदय में भारत-दर्शन की अभिलाषा जाग उठी थी । जिस तरह सोना देखकर पीतल के टुकड़े मनुष्य के मन से उतर जाते हैं, वैसे ही अब मुझे अँगरेज़ी सभ्यता से घृणा हो गई । सारा दिन कमरे में पड़ा रहता था । परन्तु शाम को देवकी और रूपचन्द आते तो जी बहल जाता था । उनको देखकर हृदय में जन्मभूमि की महिमा का चित्र खिंच जाता था ।

एक दिन स्टीला का पत्र आया । लिखा था :—

माई डियर हैरिसन !

तुम्हारे उस दिन के सद्व्यवहार ने मेरा मन मोह लिया है । मैं समझ नहीं सकती, तुम्हारा धन्यवाद कैसे करूँ ? शब्दों में यह शक्ति नहीं । मैंने सुन रखा था कि भारतीय लोग देवता स्वभाव होते हैं, परन्तु इसपर विश्वास न आता था । मैं समझती थी, यह सब कहने की बातें हैं । मगर तुमने मुझे विश्वास दिला दिया । तुम्हारा प्रेम मेरे हृदय

में इतना प्रबल कभी न था। अब वहाँ किसी दूसरे के लिए स्थान नहीं। मैं उस दिन के लिए तड़प रही हूँ जब हम दोनों भारतवर्ष चलें और वहाँ की भूमि, खेत, पर्वत, नदियाँ, हरियावल, आकाश देखकर खुश हों। अब मेरा स्वास्थ्य अच्छा है। माता-पिता का मृत्यु-शोक हलका हो रहा है। क्या किसी दिन थियेटर न चलोगे?

तुम्हारी स्टीला

पत्र पढ़कर पुराने रोग का फिर दौरा हुआ। शराबी शराबखाने के सामने पहुँचता है, तो अपनी प्रतिज्ञा भूल जाता है। स्टीला का प्यारा प्यारा चेहरा आँखों में फिरने लगा। मैं बहुत सोचता था, परन्तु समझ न सकता था, कि स्टीला ने चेक में धोखा क्यों किया? इस पत्र की अन्तिम पंक्तियों ने यह रहस्य खोल दिया। स्टीला के माता-पिता की मृत्यु हो चुकी थी। अब वह अनाथ थी, निःसहाय, असार संसार में अकेली। उसका रूप रंग कैसा फीका देख पड़ता था, आँखें अन्दर को धँस गई थीं; जैसे महीनों की बीमार हो। ऐसी हालत में उसका दोष दोष नहीं रहता, धोखा न करती तो क्या करती। परन्तु यदि मुझसे साफ़ साफ़ कह देती, तो बात यहाँ तक न पहुँचती। बीते हुए दिन फिर वापस आ गये। फिर उसी तरह रुपया उड़ने लगा। अब फिर वही स्टीला थी, वही मैं था, वही आँखें थीं, वही आँखों के भाव थे।

एक दिन मैंने कहा, "स्टीला! रुपया ख़र्च हो रहा है, क्या करेंगे?"

स्टीला ने मेरे कोट का बटन दबाते हुए पूछा—"कितना रुपया बाक़ी है? ज़रा बैंक की पास बुक देखो।"

मैंने किताब देखकर उत्तर दिया, "केवल सवा सौ पौण्ड बाक़ी है।"

"तो! कुछ चिन्ता न करो। मेरा चचा सख्त बीमार है। कुछ दिनों में मर जायेगा। वह लाखों का मालिक है। उसकी सारी जायदाद मुझे मिलेगी।"

निराशा में आशा की किरण दिखाई दी। मैंने कुरसी आगे सरका ली, और उत्कंठित नेत्रों से उसकी तरफ़ ताकते हुए बोला, "तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा याद है ?"

"उसे दिल की गाँठ समझो।"

"रुपया पाकर बदल तो न जाओगी ?"

"मैं ऐसी कमीनी नहीं।"

"रुपया बुरी चीज़ है। यह अच्छे अच्छों को बदल देता है।"

"पर तुम्हारा प्रेम रुपया से कहीं बढ़कर है। उसके सामने दुनिया-भर की नेमतें तुच्छ हैं।"

इतने में एक लड़का लिवरपूल टाइम्ज़ का ताज़ा अंक लेकर आया और मेज़ पर रखकर चला गया। मैंने उसे उठाते हुए पूछा।

"तो बुड्ढा कब तक मर जायगा ?"

"बहुत जल्द। शायद ही दो-चार दिन निकाले।"

इतने में समाचार-पत्र के पहले पृष्ठ पर मेरी दृष्टि गई। मैं ज़मीन से उछल पड़ा। कलेजा होठों तक आ गया।

यह समाचार न था, मेरे सौभाग्य का द्वार था। मोटे मोटे अक्षरों में लिखा था:—

मिस्टर क्रास वुड की मौत

अन्तिम शब्द

सारी जायदाद मेरी स्टाला के नाम

जब अख़बार प्रेस में जा रहा था, तो हमें ख़बर मिली कि लिवरपूल की मशहूर दुकान पीपल्ज़शाप के मालिक मिस्टर क्रास वुड की मृत्यु हो गई है। आप कुछ देर से बीमार थे, परन्तु यह ख़याल न था, कि इतनी जल्दी मर जायेंगे। आपने अपनी सारी संपत्ति अपनी

अनाथ भतीजी स्टीला के नाम लिख दी है, जो आज-कल बड़े संकट में है। आपके होंठों पर अन्तिम समय में अपनी भतीजी का नाम था।

मैंने समाचार-पत्र स्टीला के हाथ में रख दिया। उस समय मैं ऐसा ख़ुश था, जैसे वह संपत्ति मुझे ही मिली है। स्टीला की आँखें ख़ुशी से चमकने लगीं। मुँह पर मुस्कराहट का रङ्ग झलक रहा था। वह उठकर खड़ी हो गई और अपने लम्बे क़द को और भी लम्बा करके बोली—"मेरा ख़याल बिलकुल ठीक निकला। अब हम ग़रीब नहीं हैं।"

यह कहते कहते उसने मेरी ओर प्यार भरी आँखों से देखा और टोपी पहनकर बाहर निकल गई। शौक़ ने पाँव को पर लगा दिये थे। मैं आरामकुरसी पर लेट गया और आँखें बन्द करके अपने भविष्य का चित्र बनाने लगा। सोचता था, जब स्टीला का मुझसे ब्याह होगा तो लोग चौंक उठेंगे। समाचार-पत्रों में शोर मच जायेगा। कई लख-पति मुँह खोले बैठे हैं, सबके सब निराश हो जायेंगे। कहेंगे, एक हिन्दुस्तानी अँगरेज़ों से बाज़ी मार गया। मेरी बाछें खिली जाती थीं।

सायंकाल को रूपचन्द और देवकी आये तो मैंने यह शुभ समाचार उनको सुनाया। मगर उन्होंने विश्वास न किया। बोले, "तुम बड़े भोले हो। पश्चिम में रहे तो क्या हुआ, तुम्हारी प्रकृति तो नहीं बदल गई। स्टीला जब निर्धन थी, तुम्हारी थी। इससे उसे लाभ था। मगर अब वह पैसेवाली है। उसके कई सजातीय अमीर उससे ब्याह करने को तैयार होंगे। अब उसे तुम्हारी क्या परवा है? देख लेना वह साफ़ बदल जायगी!"

आदमी जिसे चाहता है, जिसपर विश्वास करता है, उसके विरुद्ध नहीं सुन सकता। मुझे भी उनपर क्रोध आया। रुखाई से बोला, "यह आपका वहम है।"

रूपचन्द समझ गये, इस समय कुछ कहना व्यर्थ है। पागल और प्रेमी को शिक्षा ऐसी बुरी लगती है, जैसी तेज़ कटारी, बल्कि इससे

भी बुरी। उन्होंने बात का प्रकरण बदल दिया, मगर उस दिन मुझे उनकी बातें अच्छी न लगीं। कभी उन्हें सुनकर चित्त प्रफुल्लित हो जाता था। मैंने समाचार-पत्र हाथ में ले लिया और उसे देखने लगा। किसी को टालने की यह पश्चिमी विधि है। रूपचन्द और देवकी उठ खड़े हुए। मैंने कहा, "इतनी जल्दी।"

मगर हृदय धड़क रहा था, कि कहीं बैठ न जायें। प्रकट में कहा—"इतनी जल्दी।"

देवकी ने उत्तर दिया, "हृदय में प्रसन्न हो रहे होंगे।"

मुझपर घड़ों पानी पड़ गया, मगर हँसकर चुप हो रहा। वह दोनों चले गये, तो मैंने शान्ति की साँस ली। मुझे आशा थी, कि स्टीला आ रही होगी। मैं आधी रात तक दरवाज़े पर खड़ा रहा, मगर वह न आई। तब सोचा, आज देर हो गई है, कल आयेगी। रात को यही सुपने आते रहे। दिन चढ़ा, आशा ने फिर दरवाज़े में खड़ा कर दिया। कोई मोटर आती, तो सन्देह होता, वही आ रही है। कोई आवाज़ सुनता तो समझता, वही होगी। मगर वह न आई। इसी तरह सारा दिन बीत गया। मेरे पाँव दुखने लगे। निराश होकर अंदर चला गया, और कुरसी पर गिर पड़ा। मगर आशा इतनी जल्दी नहीं मरती। आँखें दरवाज़े की तरफ़ जमी रहीं। यहाँ तक कि रात आधी से अधिक बीत गई, और होटल के नौकर ने दरवाज़ा बन्द कर लिया। यह मानों मेरी आशा का दरवाज़ा था, जो बन्द हो गया। सोचने लगा, क्या कारण है जो वह आज भी नहीं आई। अब मुझे उसपर रह-रहकर क्रोध आ रहा था। कहीं पैसा पाकर मुझे भूल तो नहीं गई। अगर यही बात है तो मैं उसका मुँह भी न देखूँगा। रुपये का अभिमान करती है। मगर उसे सोचना चाहिए कि मैं भी कंगाल न था। मैंने अपना धन उसी पर निछावर किया है। सँभालकर रखता, तो उस जैसी सैकड़ों को ख़रीद लेता। फिर विचार आया, नहीं; उसे

मुझसे सच-मुच प्रेम है। वकीलों से सलाह कर रही होगी। दुकान की देख-भाल में लगी होगी। समय नहीं मिला, नहीं तो भागी भागी चली आती।

इसी आशा में सप्ताह बीत गया, मगर वह न आई। अब मुझे विश्वास हो गया कि मेरी आशा-लता हरी न होगी। हृदय को शान्ति की प्रेरणा करने लगा, जिस तरह कोई अपने प्यारे भाई-बन्धु की मौत पर हृदय को समझाता है। मगर उसका ध्यान भूलता न था?

मुझे वह रह-रहकर याद आती थी, जैसे मरे हुए संबंधी का ख़याल सहज में दूर नहीं होता। अकस्मात् एक दिन एक आदमी ने आकर पत्र दिया। लिखा थाः—

इसी समय आओ, दरवाज़े पर खड़ी हूँ। स्टीला।

———

८

ऐ भाई ! मै .खुशी से झूमने लगा । उस वक्त मैं भूमि पर था, परन्तु मेरा दिमाग़ आकाश में था । भागा-भागा स्टीला के मकान पर पहुँचा । वह ख़ूबसूरत थी । उसे मैंने सैकड़ों बार देखा था । मगर उस बहुमूल्य वेश में वह अप्सरा मालूम होती थी । आज उसका सौंदर्य्य फटा पड़ता था । वह सचमुच मेरी प्रतीक्षा कर रही थी । मुझे देखकर उसके होंठों पर मुस्कराहट आ गई । मेरे हृदय में क्रोध भरा था । मेरा विचार था, कि जाते ही उलाहनों की बौछार शुरू कर दूँगा । मगर इस मुस्कराहट के प्रवाह में क्रोध और उलाहने इस तरह बह गये जैसे पानी के प्रवाह में काग़ज़ और तिनके बह जाते हैं । मेरे होंठ बन्द हो गये । मगर स्टीला चुप न रही । मेरी तरफ तिरछी आँखों से देखकर बोली, "मुझे आप पर बहुत क्रोध है ।"

अब मेरी जीभ को भी बोलने का साहस हुआ । मैंने कहा—

"मुझे चुप देखकर तुमको साहस हो गया है ।"

"आपने मेरी बात तक न पूछी । बड़े कठोर-हृदय हो ।"

"यह मुझसे न पूछो, अपने दिल से पूछो ।"

"पर आप आये क्यों नहीं ? क्या इतना भी ख़याल न था, कि चलकर देखूं तो सही। ग़रीब पर क्या गुज़री है।"

"अब ग़रीब हम हैं। आपके तो भाग खुल गये।"

"यह उलझने ताने अच्छे नहीं लगते।"

मैंने सिगार सुलगाकर उत्तर दिया, "अब जो कहो, सब सच है।"

"जी चाहता था, ज़हर खाकर मर जाऊँ। ज़रा ख़याल करो, कितना बड़ा मकान है और कैसा सजा हुआ। पर तुम्हारे बिना क़ब्रिस्तान से ज़्यादा डरावना मालूम होता था।"

मैंने आगे बढ़कर उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया, और प्यार से बोला, "तुमने मुझको ख़बर क्यों न दी। दौड़ता हुआ चला आता।"

स्टीला ने अपनी ठोड़ी पर उँगली रखकर जवाब दिया—"लो और सुनो। मुझे तो सिर खुजलाने की भी फ़ुरसत न थी।"

"अगर मुझे यह मालूम होता—तो"

"अच्छा अब जाने दो। तुम्हें देखकर सारा क्रोध उतर गया।"

मैं कुछ देर चुप रहा, और फिर स्टीला के मुँह की तरफ़ ताकते हुए धीरे से बोला, "स्टीला ! अब ब्याह में देर न होनी चाहिए। इस तरह मिलने-मिलाने से दिल की प्यास नहीं बुझती।"

स्टीला के मुख पर लज्जा की लाली दौड़ गई। हाथों के दस्ताने उतारते हुए बोली, "मेरा अपना भी यही ख़याल है।"

सहसा बाहर किसी के पाँवों की चाप सुनाई दी, और साथ ही आवाज़ आई, "इस छोटे कमरे में रख दो।"

स्टीला के चेहरे का रंग उड़ गया। हाथ-पाँव काँपने लगे। ऐसा जान पड़ता था, वह गिरकर बेहोश हो जायेगी। मैं क़ाँप गया। मेरे शरीर में बल न रहा। सोचने लगा, यह क्या हो रहा है। अब तक स्टीला बैठी थी, एकाएक खड़ी हो गई। उसकी आँखें चमकने लगीं,

जैसे भूला हुआ मुसाफ़िर रास्ता मिल जाने से प्रसन्न हो जाता है। उसने उँगली से एक कमरे की तरफ़ इशारा किया, और मेरे हाथ में चाबियों का गुच्छा देकर कहा, "अंदर छिप जाओ। मौक़ा पाकर पिछली ओर का दरवाज़ा खोलकर निकल जाना। मुझसे इस समय कुछ न पूछो। मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं, सारी बात फिर कहूँगी।"

यह कहते-कहते उसने मुझे अन्दर ढकेल दिया और बाहर से ताला लगा दिया। मैं डरे हुए बच्चे की तरह सहम गया। मुँह से एक शब्द तक न निकला। जिस तरह सोये हुए आदमी को उठाकर समुद्र में फेंक दिया जाये, तो वह जागने पर अपने आपको मौत की गरजती हुई लहरों में देखकर घबरा जाता है, उसी तरह मैं घबरा गया था। क्षण-मात्र में यह हो जायेगा, यह आशा न थी। प्रेम को फूलों की सेज समझकर आया था। यदि पहले सोचा होता कि इसमें काँटे भी होंगे तो यह दिन न आता। फूल देख चुका था, अब काँटों की बारी थी। थोड़ी देर के बाद मैं घबराने लगा, जैसे यहाँ वर्षों से बन्द हूँ। जी चाहता था, दरवाज़ा तोड़कर निकल जाऊँ। बाहर कोई गाता हुआ जा रहा था। उसकी इस दशा पर ईर्ष्या हुई। कितना भाग्यवान् है, जहाँ चाहता है जाता है, पता नहीं कौन है, मगर उसे कोई भय, कोई शंका नहीं। स्वतन्त्रता का मूल्य स्वतन्त्रता खोकर मालूम हुआ, यद्यपि केवल एक-दो घण्टे की बात थी। मैं एक कुरसी पर बैठ गया, और स्वतंत्रता के क्षण की राह देखने लगा। इतने में किसी ने कहा, "मैं वापस आ गई। वकील ने मुझे तार दिया था।"

आवाज़ किसी बुढ़िया की मालूम होती थी।

स्टीला ने जवाब दिया—"कोई ख़ास बात होगी। नहीं तो वह तार कभी न देता।"

"ऐसा ही मालूम होता है। मेरी वापसी से तुमने बुरा तो नहीं माना।"

"बेटी मा का आना बुरा माने, यह कैसे हो सकता है ?"

"नहीं, मैंने यों ही पूछा था।"

"ऐसी बातें सुनकर मुझे आग लग जाती है।"

"माफ़ कर दो, फिर न पूछूँगी। ज़रा सामने के कमरे की चाबी देना।"

मेरे शरीर से पसीना छूटने लगा।

"क्या करोगी ?"

"मेरा गौन अन्दर है।"

स्टीला ने उत्तर दिया, "तुम थकी हुई हो, आराम करो। मैं निकाल लाती हूँ।"

"नहीं थकान काहे की। कौन-सा पैदल सफ़र किया है जो पाँव नहीं उठते।"

"फिर भी बुड्ढी हो, सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते ही दम फूल जाता है। मैं यह नहीं देख सकती।"

मगर बुड्ढी ने न माना, चाबी लेकर दरवाज़े की ओर आई। उसका आना मेरी मौत का आना था। मेरा दम रुकने लगा, चाहा कि उठकर पिछली तरफ़ का दरवाज़ा खोलकर निकल जाऊँ। पर पाँव हार चुके थे। उठने की शक्ति न रही। बुड्ढी दरवाज़ा खोलकर अन्दर आ गई। मैं एक कोने में छिपा था, मगर उसकी दृष्टि मुझपर पड़ गई। होनहार को टालने की ताक़त किसमें है ? उसने ज़ोर से चीख मारी, और चिल्लाकर कहा, "चोर !"

मेरा लहू सूख गया। परिस्थिति ऐसी भयानक रूप धारण कर लेगी, यह सुपने में भी न सोचा था। स्टीला को बचाव का उपाय सूझ गया। वह भी भागकर बाहर निकल गई, और ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने लगी, "चोर, चोर।"

यह सुनकर मैं इस तरह चौंक पड़ा जैसे आस्तीन से साँप निकल

आया हो। मैंने स्टीला की रुखाई, धोका, छल देखा था, परन्तु उससे यह आशा न थी कि अपने चरित्र-यज्ञ पर मेरी आन की भेंट चढ़ा देगी। मेरे पाँव मन मन के भारी हो गये। मूर्त्ति की तरह खड़ा रह गया। इतना भी न हो सका, कि चाबियों का गुच्छा ही फेंक दूँ। इतने में पुलीस के एक सिपाही ने आकर मुझे गिरफ्तार कर लिया। मैं एक दो घण्टे की क़ैद में घबरा रहा था, अब कई सालों की क़ैद सामने थी। परन्तु मुझे परवा न थी। मनुष्य की कृतघ्नता ने क़ैद के अपमान और दुःख को कम कर दिया था। पीछे पता लगा, कि वह बुढ़िया स्टीला की मौसी थी। और स्टीला के चचा वसीयत में लिख गये थे, कि स्टीला को उसकी इच्छा पर चलना होगा! स्टीला ने उसकी प्रसन्नता का विचार किया, परन्तु मेरी इज्जत-आबरू का विचार न किया।

९

ऐ भाई! मुझ पर मुक़दमा चला। समाचार-पत्रों को मज़मून मिल गया। मोटे-मोटे अक्षरों में शीर्षक देकर समाचार छपने लगे। कोई मुझे सभ्य-चोर लिखता था, कोई हिन्दुस्तानी दिवालिया। कुछ पत्रों ने तो यहाँ तक लिख दिया कि मेरी आजीविका यही है। स्टीला से संवाददाताओं ने पूछा। उसने अपनी प्रतिष्ठा बचा ली, परन्तु मुझे बदनाम करने में कोई कसर न छोड़ी। कहा, कि मैं इस Indian (हिन्दुस्तानी) से सर्वथा नावाक़िफ़ हूँ। मैंने उसे इससे पहले कभी नहीं देखा। मेरा विचार है, वह सिर्फ़ चोरी करने के लिए ही मेरे मकान में घुसा था। उसका और प्रयोजन क्या हो सकता है? मैंने यह पढ़ा, तो पैरों तले से मिट्टी निकल गई।

दण्ड का विश्वास हो गया। मैंने अपने कई अँगरेज़ मित्रों को लिखा, कि मेरी सहायता करो। पर किसी ने उत्तर न दिया। लेकिन रूपचन्द इस घोर संकट में काम आये और मुझे ज़मानत पर छुड़ाकर ले आये। इसके बाद मैंन कई दिन तक उन्हें आराम से बैठे नहीं देखा। दिन-रात मेरे मुक़दमे की तैयारियों में लगे रहते

थे। उनकी तत्परता को देखकर मुझे संदेह होने लगता था, कि मुकद्दमा मुझपर नहीं ख़ुद उनपर चल रहा है। वही काग़ज़ रखते थे, वही सफ़ाई तैयार कर रहे थे, वही गवाहियाँ बनाते थे, वही वकीलों के पास जाते थे। उनकी इस लगन ने मुझे बेपरवा बना दिया था। मैं सारा सारा दिन देवकी के पास बैठा रहता था। तब मुझे उसके आत्म-गौरव का ज्ञान हुआ। उसे मैंने कभी मेरी कोरिली, रेनाल्ड्स, विक्टर ह्यूगो और एलैग्ज़ैण्डर डूमा के उपन्यास पढ़ते नहीं देखा। वह उन्हें पसन्द न करती थी। वह रामायण और गीता पढ़ती थी। इन पुस्तकों में रेनाल्ड्स के उपन्यासों के से चक्कर नहीं, न डूमा के से हेर-फेर हैं। परन्तु इनमें मानव-जीवन के ऐसे पवित्र और उच्चादर्श दिखाये गये हैं कि मैं सुनकर उछल पड़ा। पश्चिम के समस्त साहित्य को एक रामायण से वही तुलना है जो एक तुच्छ परमाणु को भगवान सूर्य्य से है। अँगरेज़ी के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखकों की सर्वोत्तम पुस्तकों को इस अकेली पुस्तक पर निछावर कर सकता हूँ। मुझे यह आशा न थी, कि भारतवर्ष में ऐसी पुस्तकें भी हैं। देवकी को सीता का चरित्र बहुत पसन्द था। उनका नाम सुनकर उसकी आँखों में आँसू आ जाते थे। और वह सिर्फ़ पढ़ती न थी, जो कुछ पढ़ती थी उसे अपने जीवन में धारण भी करती थी। वह बड़ी नम्र, कोमल-स्वभाव, विशुद्ध-हृदय, साधु-प्रकृति और ज्योतिर्मयी स्त्री थी। उसे देखकर मुझे भारत पर अभिमान होने लगता था। उसने मुझे कभी पिछले किये हुए पापों के लिए दोष नहीं दिया। कभी मेरी भूलों का प्रकरण नहीं छेड़ा। वह इस बात को सभ्यता से गिरा हुआ समझती थी। मैं उसके जितना समीप होता जाता था, वह उतनी ही अधिक पवित्र और शुद्ध मालूम होने लगी। जी चाहता था, उसके पैरो से लिपट जाऊँ—वह नारी नहीं, देवी थी। उसकी मातृकरुणा पर मेरा दिल लोट-पोट हो गया।

ऐ भाई! मुक़द्दमे का फ़ैसला हुआ। रूपचन्द के प्रयत्न सफल

हुए। मैं छूट गया। और इतना ही नहीं, स्टीला पर उल्टा मुक़द्दमा चला। उसने एक भले आदमी की मानहानि की थी। उसे पचीस पौण्ड जुर्माना हुआ। यह पचीस पौण्ड मेरी प्रतिष्ठा का मूल्य था। मैंने रूपचन्द का धन्यवाद किया। उसके साथ मेरा कोई नाता न था, कोई सम्बन्ध न था। उसने केवल भारतीय होने के नाते मुझ पर उपकार किया था। यह नाता मित्रता और लहू के नाते से भी दृढ़ है। यह जन्म भूमि का नाता है। यह देश का नाता है।

मेरे हृदय में पति-पत्नी दोनों के लिए कृतज्ञता-भाव ने घर कर लिया। मैं एक को देवता समझता था, दूसरे को देवी। मैं अपने मन-मन्दिर में दोनों की पूजा करता था। मनुष्य इतना निःस्वार्थ, इतना नेक, इतना कोमल-स्वभाव हो सकता है, इसकी मुझे आशा न थी। उन्हें बाज़ार में जाते देखकर ऐसा मालूम होता था, जैसे कौओं में दो राजहंस जा रहे हों। मेरा मेल-जोल उनसे बढ़ने लगा। पहले वह मेरे पास आया करते थे, अब मैं उनके पास जाने लगा। अगर एक दिन भी न जाता, तो मन उदास हो जाता, जैसे किसी आवश्यक कर्त्तव्य को पूरा न किया हो। और यह मेरी ही दशा न थी, वह भी मुझे घर का आदमी समझने लगे थे, और हर एक विषय में मुझसे सम्मति लिया करते थे।

एक दिन मैं और देवकी सैर को गये। आसमान पर बादल लहरा रहे थे। देवकी बार-बार आसमान की ओर देखती थी। शायद उसको भय था, कि कहीं वर्षा न होने लगे। मगर मुझे इसकी परवा न थी। हमने एक नाव किराये पर ली, और समुद्र की सैर करने लगे। देवकी उस समय भी हिचकिचा रही थी, पर उसने अपने मन की बात मुझपर साफ़ साफ़ प्रकट न की। शायद उसको डर था, कि मैं नाराज़ न हो जाऊँ। नाव समुद्र की लहरों पर नाचती हुई आगे बढ़ी। हम जल क्रीड़ा देखने में तन्मय हो गये। इस अवस्था में कितना समय बीत गया, मैं कुछ नहीं कह सकता। हम किनारे से बहुत दूर आ गये

थे। एकाएक बारिश होने लगी। इस बारिश ने हमपर वही काम किया, जो जल के छींटें गहरी नींद में अचेत सोनेवालों पर करते हैं। हम चौंक पड़े। किनारे की ओर आँखें उठाई, तो कलेजा निकल गया। सोचने लगे, अब क्या होगा? हवा प्रबल वेग में चल रही थी। और मल्लाह की सारी चेष्टाएँ निष्फल हो रही थीं। उसके किये कुछ बनता न था। समुद्र की भयंकर तरंगों के सामने उसकी कुछ पेश न जाती थी। मैं घबरा गया, मगर देवकी के मुख-मण्डल पर घबराहट न थी। वह उस समय भी ऐसी ही खुश, ऐसी ही प्रसन्न थी जैसे अपने घर में बैठी हो। मुझसे बोली, 'अब घबराने से क्या होगा। जो होता है देखते जाओ, और परमात्मा पर भरोसा रखो।"

मेरे हृदय में तीर सा चुभ गया। सोचा, यह स्त्री है, मगर फिर भी तूफान में शान्त बैठी है। मैं पुरुष हूँ, मगर हृदय थरथरा रहा है। इसकी तह में क्या बात काम कर रही है? केवल यही कि उसे परमात्मा पर भरोसा है, मुझे नहीं। ऐ भाई, इस विषय में पश्चिम परमात्मा से विमुख है। पश्चिम का निवासी अपने बाहु-बल पर भरोसा करता है, अपने बुद्धि-बल पर भरोसा करता है। परन्तु परमात्मा पर भरोसा नहीं करता। वह इसे मूर्खता समझता है।

नाव हिचकोरे खाने लगी। मेरा मन भी उसी तरह हिचकोरे खा रहा था। देवकी ने अपने आपको परमात्मा की इच्छा पर छोड़ दिया था। पर मुझमें यह शक्ति न थी। मैं जल की तरफ़ और उसकी मृत्यु से भी अधिक भीषण तरंगों की तरफ़ देखता था, और काँपता था। एकाएक एक लहर ने नाव को उलट दिया।

१०

ऐ भाई ! मल्लाह अपनी जान बचाकर निकल गया, मगर हम मौत के मुँह में थे। मैंने साहस नहीं हार दिया। मैं समुद्र की भयानक लहरों के साथ संग्राम करने लगा। मुझे इतना अपना ख़याल न था। मैं चाहता था, किसी तरह देवकी बच जाये। उसके और उसके पति के उपकार मेरे सामने आ गये थे। मैं हाथ-पाँव मारने लगा, मगर देवकी कहीं दिखाई न दी। मैंने चारों ओर देखा, दूर दूर तक दृष्टि दौड़ाई, पर उसका पता न लगा। मैं निराश हो गया। सहसा कोई वस्तु मेरी ओर आती दिखाई दी। मेरे आनन्द का पारावार न रहा। यह देवकी थी। मैं उसकी तरफ़ बढ़ा, और उसे एक हाथ से पकड़कर दूसरे हाथ से जल को चीरता हुआ किनारे की ओर तैरने लगा।

मगर किनारे तक पहुँचना आसान न था। मेरा दम फूल गया। हाथ-पाँवों में शक्ति न रही। अथाह सागर की तरफ़ देखकर हृदय बैठा जाता था। परन्तु देवकी का ख़याल मेरा साहस बढ़ाये जाता था। मौत और जीवन साथ-साथ खड़े थे। मैं हाथ मारता गया। देखने

में ऐसा मालूम होता था, कि मेरी कोशिशें कभी सफल न होंगी। एकाएक मैंने देखा, किनारा पास ही है। मरे हुए शरीर में प्राण आ गये, टूटा हुआ साहस बँध गया। मैंने अपने शरीर और आत्मा की सम्पूर्ण शक्ति लगा दी और देवकी को लेकर किनारे पर चढ़ आया।

ऐ भाई! हम मौत के मुँह से निकल आये थे, मगर अभी तूफ़ान के मुँह से न निकले थे। मैं आश्रय की जगह ढूँढ़ने लगा। देवकी को हाथों पर उठाये हुए मैं चारों ओर दौड़ रहा था। हाथ थक चुके थे, पाँव चलने से हार गये थे, परन्तु मैं फिर भी चल रहा था। यह साहस-संग्राम न था, जीवन-संग्राम था। आख़िर एक प्राचीन काल का झोपड़ा मिल गया। इस झोपड़े की दीवारें टूट-फूट चुकी थीं, फ़र्श जहाँ-तहाँ से उखड़ गया था, परन्तु इस भयानक वर्षा और तूफ़ान के समय यह झोपड़ा किसी राज-महल से कम न था। मैं झटपट अन्दर चला गया। एक ओर घास के अंबार लगे थे। मैंने उसे भूमि पर बिछाकर एक गुदगुदा बिस्तरा तैयार किया और उसपर देवकी को बेहोश देह को लिटा दिया।

वर्षा हो रही थी। मैं झोंपड़े से बाहर निकला और गिरते-पड़ते साथ के गाँव में पहुँचा। यहाँ से कुछ दूध ख़रीदा, कुछ डबल-रोटियाँ। कोयलों और कंबलों के लिए रुपये दे आया। मज़दूरों ने यह सब समान झोपड़े में पहुँचा दिया। अब यह एक किसान का घर बन गया था। मैंने चाय तैयार की और देवकी को उठाकर बिठा दिया। उसके मुँह का रंग उड़ा हुआ था, आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी हुई थी। वह चाहती थी, कि जैसे भी हो सके, रूपचन्द के पास पहुँच जाएँ। परन्तु मूसलाधर वृष्टि ने रास्ता रोक रखा था। यहाँ तक कि तीन दिन के बाद वर्षा थमी। मैंने गाँव में जाकर एक गाड़ी का प्रबन्ध किया और देवकी को लेकर लिवरपूल की तरफ़ चला।

रास्ते में देवकी बोली—"वह मुझपर नाराज़ हो रहे होंगे।"

"परन्तु इसमें तुम्हारा दोष ही क्या है ? इस भयानक तूफ़ान में बाहर निकलना आसान न था।"

"आसान होता, तो मैं एक दिन भी न रुकती।"

"इसलिए फ़िक्र न करो।"

देवकी थोड़ी देर चुप रही। इसके बाद बोली :—

"घबरा रहे होंगे।"

"अब क्या घबरायेंगे, जल्दी ही तुम उनके पास पहुँच जाओगी।"

"बिना पूछे निकल आई थी। भविष्य के लिए कान हो गये।"

इसका मैंने कुछ उत्तर न दिया। मन में सोचने लगा, रूपचन्द को कुछ संदेह तो न हो जायेगा। देवकी तीन दिन मेरे पास रही है और अकेली, शहर से बाहर एक झोपड़े में। ऐसी अवस्था में संदेह होना आश्चर्य्य नहीं। आश्चर्य यह है कि संदेह न हो। मुझे भय हुआ, यदि रूपचन्द के हृदय में कोई शंका बैठ गई, तो देवकी का जीवन नष्ट हो जायेगा। वह इसे सहन न कर सकेगी। मैं चिन्ता में लीन हो गया। थोड़ी देर के बाद बोला :—

"जब वह पूछेंगे, कहाँ रही हो, तो क्या कहोगी ?"

"जो सच बात है, वही कहूँगी और क्या कहूँगी।"

मैं चौंक पड़ा। मैं उसके मुँह से यह जवाब सुनने के लिए तैयार न था। मैं कुछ कहना चाहता था, परन्तु किसी दैवी शक्ति ने मेरी जीभ पकड़ ली। शायद मुझे अपनी पवित्रता पर वह विश्वास न था जो देवकी को अपनी पवित्रता पर था। मैंने धीरे से कहा—"सच कहना अनुचित तो न होगा।"

"क्या मतलब ?"

"ज़रा सोचकर देखो।"

देवकी अपने स्थान से उछल पड़ी, जैसे उसके कान के पास किसी ने बन्दूक चला दी हो। उसका मुँह तपे हुए लोहे की नाईं लाल हो

गया। घबराकर बोली—"क्या तुम्हारा यह मतलब है, कि वह मुझ पर संदेह करने लगेंगे।"

"हाँ, परिस्थिति ऐसी हो गई है, कि वह संदेह कर सकते हैं।"

देवकी थोड़ी देर सोचती रही, फिर ठंडी आह कर बोली :—

"परन्तु मुझे यह आशा नहीं। वह मुझे अच्छी तरह जानते हैं।"

मुझे साहस हुआ, आशा से बोला :—

"तो साफ़ साफ़ कह दो।"

"परन्तु यदि उन्होंने विश्वास न किया तो—"

देवकी की आँखों में आँसू आ गये। हाथ मलते हुए बोली—"मैंने बुरा किया है। मेरे कानों में कोई कह रहा है, कि इसका परिणाम अच्छा न होगा।"

मैंने कुछ देर तक सोचा और फिर कहा—"मुझे एक युक्ति सूझी है, कहो तो कह दूँ।"

"मैं समझ गई, कहिए।"

मैंने पूछा—"तुम क्या समझी हो ?"

"झूठ बोलना होगा मुझे ?"

"हाँ, झूठ बोलना होगा।"

"जी चाहता है, कुछ खा लूँ। उनके सामने आँखें न उठेंगी। तो तुम्हारी राय में मुझे क्या कहना चाहिए।"

"कह दीजिए, मैं ज़रा अपनी सहेली कैथराईन नानसी के यहाँ चली गई थी। दैवयोग से तूफान ने आ घेरा। तीन दिन तक वहीं पड़ी रही। वर्षा के मारे बाहर पाँव रखना कठिन था। अब कुछ कम हुई है तो आ गई हूँ।"

देवकी के चेहरे से मालूम होता था, कि वह झूठ बोलने को तैयार नहीं है। वह भारत-देश की श्रद्धा-पूर्ण महिला थी, जो अपने पति की पूजा करती हैं और उसे परमात्मा समान समझती हैं। उसने

कभी पति से झूठ न बोला था। वह इसे पाप समझती थी। यह उसके जीवन में पहला अवसर था। अंतःकरण अनसिधे हुए घोड़े की तरह सरकशी कर रहा था। कुछ देर तक यह देवासुर-संग्राम होता रहा। आख़िर असुरों की विजय हुई। देवकी ने मेरी युक्ति मान ली और अपने मकान के पास पहुँचकर गाड़ी से उतर गई। मैं अपने होटल को चला आया।

और मेरा मन कहता था, भूल हो गई है, नतीजा बुरा होगा।

—

११

ऐ भाई ! रूपचन्द घबराये हुए थे। देवकी को पाकर उन्हें ऐसी प्रसन्नता हुई जैसे किसी को डूबा हुआ धन मिल जाय। उन्हें देवकी के कथन पर ज़रा भी संदेह न हुआ। उन्हें यह गुमान भी न था, कि देवकी उनसे झूठ बोल सकती है। उसकी बात सुनकर उन्होंने और कोई प्रश्न नहीं किया। वह संपूर्ण रूप से संतुष्ट थे। मगर देवकी का संतोष और शान्ति दोनों नष्ट हो गये। वह सदा सशंक रहने लगी। सोचती थी, मैंने उनसे क्यों झूठ बोला। उसके शब्द "मैं अपनी सहेली कैथराईन नानसी के यहाँ थी" हर घड़ी उसके दिमाग़ में पाप-स्मृति की तरह डङ्क मारते रहते थे। वह चाहती थी, कि किसी तरह यह शब्द वापस ले लूँ। परन्तु आँख से गिरा हुआ आँसू और पिंजरे से छुटा हुआ पंछी कहाँ लौटता है? वह प्रायः मुझसे कहती, जी चाहता है, उनके पैरों से लिपटकर अपने पाप को स्वीकार कर लूँ। उनका हृदय करुणा का स्रोत है, मुझे तत्काल क्षमा कर देंगे। मगर मैंने प्रत्येक बार उसके शिव-संकल्प को दबा दिया। कहा, अब यह भूल भयानक होगी। उन्हें अवश्य संदेह हो जायेगा। यह संदेह तुम्हारे जीवन और सुख को इस प्रकार निगल जाएगा, जिस प्रकार तूफ़ानी

नदी की गर्जती हुई लहरें हरे भरे खेतों को निगल जाती हैं। जिन चला जाता है, पर जन नहीं जाता। अब सोचता हूँ, कि मैंने उसे यह कुमति क्यों दी। परन्तु भूल यहीं पर समाप्त नहीं हो गई। प्रायः हमारी बातचीत में रूपचन्द अन्दर आ जाते, मैं और देवकी दोनों अनाड़ी थे। हम झूठ बोल सकते थे, झूठ को छिपा न सकते थे, न झूठ को निभा सकते थे। इसलिए ज्योंही रूपचंद को देखते, वहीं चुप हो जाते। जैसे हम चोरी कर रहे थे, जैसे कोई पाप कर रहे थे। आँखें झुक जातीं, मुँह लाल हो जाते, ज़बानें गूँगी हो जातीं। फिर हम अपनी व्याकुलता को छिपाने का यत्न करते थे। मगर नया चोर चोरी करता है, और वह चोरी को छुपाते छुपाते ज़ाहिर कर देता है। उसे कोई दूसरा नहीं पकड़ता, वह अपने आपको आप पकड़ा देता है। यही हाल हमारा था। रूप-चंद को संहदे होने लगा। हम डरने लगे।

यह संदेह कुछ दिन संदेह रहा, इसके बाद विश्वास बन गया। एक दिन कहीं बाज़ार में कैथराईन नानसी और रूपचंद से भेंट हो गई। कोई आध घण्टे तक बातें होती रहीं, घर आये तो नाग की तरह फूँकारे मार रहे थे। उस समय उनके नथने फूले हुए थे, आँखों से आग के चिङ्गारे निकल रहे थे। देवकी से त्योरी चढ़ा कर बोले, "देवकी! मुझे तुझसे यह आशा न थी। मैं तुझे देवी समझता था, मैं तेरी सौगन्ध खाता था। मैं समझता था, सब कुछ हो सकता है, यह नहीं हो सकता। परन्तु मुझे यह पता न था कि स्त्री पर विश्वास करना पहले दर्जे की मूर्खता है। तूने मेरी आँखें खोल दी हैं।" जिस तरह ज़हरी साँप का ज़हर देखते देखते रोम रोम में फैल जाता है, उसी प्रकार रूपचंद के इन शब्दों का प्रभाव देवकी के प्रत्येक रक्तबिन्दु में फैल गया। यह शब्द न थे, शब्द-शर थे। वह कुछ न बोल सकी। सोफ़े से उठी, परन्तु लड़खड़ाकर गिर पड़ी। यह मूर्च्छा देवकी के पाप की स्वीकृति थी।

१२

ऐ भाई ! जब देवकी को सुध आई, तो रूपचन्द वहाँ न थे। वह मेज़ की ओर दौड़ी। वहाँ यह पत्र पड़ा थाः—

देवकी ! तूने मेरा दिल तोड़ दिया है। मुझे भारतीय स्त्री पर श्रद्धा थी। मैं उसकी पूजा करता था। तूने मेरा विश्वास भंग कर दिया है। मुझे तुझसे यह आशा न थी। तू तीन दिन घर से बाहर रही, और तूने मुझे कहा, कि मैं कैथराईन नानसी के यहाँ थी। परन्तु तेरी आँखों ने तेरा भेद खोल दिया। मुझे सन्देह होने लगा। मगर मैंने उसे प्रकट नहीं किया। मुझमें यह साहस न था। मैं समझता था। यह तुझपर, तेरे आत्माभिमान पर, तेरे आचार पर अत्याचार करना है। परन्तु जब कैथराईन नानसी ने कहा, कि उसे तुझसे मिले महीनों बीत गये हैं, तो मेरा संदेह विश्वास के रूप में बदल गया। जी चाहता है, समुद्र में कूद कर मर जाऊँ। जीवन में कोई उल्लास, कोई रस नहीं रहा। अब जीता रहने से क्या होगा ?…… ।

रूपचन्द।

देवकी ने ठंडी साँस भरी और कौच पर लेट गई। इस समय

उसके हृदय में हज़ारों विचार उठ रहे थे, जिस प्रकार वर्षा ऋतु में शाम को छोटे छोटे कीड़े उड़ने लगते हैं। यह कीड़े कितना कष्ट देते हैं, कितना व्याकुल कर देते हैं। उन्हें देखकर चित्त घबरा उठता है, वह आदमी का अनिष्ट नहीं कर सकते, परन्तु उसका उठना-बैठना कठिन कर देते हैं। यही हालत देवकी की थी। वह उन विचारों से घबरा रही थी। मगर मैं कुछ ऐसा निराश न था। समाचार-पत्रों में विज्ञापन दिये, सुहृद-मित्रों को तार भेजे। देवकी सारा सारा दिन प्रतीक्षा करती रहती थी। सोचती, आज अवश्य कोई समाचार आयेगा। दिन चढ़ता और ढल जाता, मगर कोई समाचार न मिलता। देवकी ठण्डी साँस भरती और भूमि पर लेट जाती। इसी प्रकार कई महीने बीत गये। उसका खाना-पीना छूट गया। पहरने की सुध न रही। उसे देखकर मेरे कलेजे पर छुरियाँ चल जाती थीं। सोचता था, यह सब मेरी ही करतूत है। उसका शरीर मुर्झा गया था, केवल अस्थि-पञ्जर बाकी था। न मुख पर रौनक़ थी, न आँखों में चमक। परन्तु उसका तेज वैसे का वैसा ही था। मुझे उसकी ओर देखने का साहस न होता था। सती की आँख में आग होती है। वह जिसपर पड़ती है, उसे जलाकर राख कर देती है। मैं उस आग से इस प्रकार डरता था, जिस प्रकार हिरन का बच्चा धनुष ताने हुए व्याध से डरता है। मैं देवकी की ख़बर लेने हर रोज़ जाता था, परन्तु सहमा सहमा सा रहता था। डरता था, कि कहीं उसकी आँखें मेरी आँखों से दो चार न हो जायें। उसके संयम ने मेरे हृदय में श्रद्धा का भाव उत्पन्न दर दिया था। मैं पहले उसे देवी समझता था, अब महादेवी समझने लगा। मैंने यूरोप की सहस्रों विरहिणी स्त्रियों को देखा है। पति-वियोग की अँधेरी-रात्रि में उनकी चाल-ढाल में कभी फ़र्क नहीं आता। वह उसी तरह हँसती हैं, उसी तरह खेलती हैं। उनके खान-पान में रहन-सहन में, बनाव-सिंगार में कोई कमी नहीं होती। मगर देवकी का पति नहीं गया,

उसकी सारी दुनिया चली गई। उसके बाद किसी ने उसके होठों पर मुस्कराहट नहीं देखी। कमरे में बहुत बढ़िया सामान था, उसे उठवा दिया और महाकंगालों के समान रहने लगी। राम के विरह में जो दशा भगवती सीता की हो गई थी, वही दशा अब देवकी की थी। वह पावन-कथा मुझे स्वयं देवकी ने सुनाई थी। परन्तु उसे यह पता न था, कि इस घटना को कार्य्यरूप में भी मेरे सामने उसे ही रखना होगा।

अब मेरे मन की एक ही अभिलाषा थी, और वह यह कि जैसे भी हो, अपनी भूल का सुधार करूँ, और रूपचन्द को ढूँढकर देवकी के हवाले कर दूँ। सोचता था, उस दिन खुशी से पागल हो जाऊँगा। संसार में लाखों सुख हैं, परन्तु दो बिछड़ी हुई पवित्र आत्माओं को मिला देना सबसे बड़ा सुख है। यह पवित्र दृश्य, यह आध्यात्मिक मिलाप, यह नैतिक सुषमा देखकर हृदय को कौन सँभाल सकता है? ज्यों-ज्यों दिन गुज़रते गये, यह अभिलाषा किसी प्रेमी की उद्विग्नता के समान बढ़ती गई, यहाँ तक कि रात की नींद भी उड़ गई। "तू अपने कर्त्तव्यपालन में सुस्ती करता है" यह शब्द कानों में गूँजने लगे। यह कोई झूठी आवाज़ न थी, यह कोई कल्पित ध्वनि न थी। यह परमात्मा की वाणी थी। इसने मुझे सन्मार्ग दिखा दिया। मैं कुछ दिन सोचता रहा। आखिर दृढ़ संकल्प कर लिया, और रूपचन्द की खोज में निकला। पश्चिम के प्रकृति-पुजारी लोग मुझपर हँसेंगे, मगर मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता, कि यह प्रेरणा ईश्वरीय प्रेरणा थी।

मैंने फ्रांस, जर्मनी, स्विटज़रलेण्ड में, वहाँ के थियेटरों, लैक्चर-घरों और पर्वतों में तलाश की, मगर रूपचन्द का पता न मिला। स्विटज़रलेण्ड में उनके मिल जाने की बड़ी आशा थी, मगर वह वहाँ भी न मिले। मेरा मन निराश हो गया, जिस तरह विद्यार्थी बारबार फ़ेल होकर निराश हो जाता है। मैंने देवकी को पत्र लिखे और उसमें

अपनी निराशा की सारी कहानी लिख दी। देवकी ने उन पत्रों का कोई जवाब न दिया, पर बहुत सा रुपया भेज दिया, जिससे मैं खोज जारी रख सकूँ।

मैं अमरीका पहुँचा। यहाँ रामकृष्ण मिशन की ओर से कई विशाल मन्दिर खड़े हैं। वहाँ वेदान्त-गोष्ठी होती है, ज्ञान-ध्यान के तत्त्व वर्णन किये जाते हैं। दिन-रात ज्ञान-गंगा बहती है। मेरा मन आनन्द से उछलने लगा। आशा हुई, अब सफलता दूर नहीं। रूपचन्द इन्हीं मन्दिरों में से किसी एक में होंगे। आदमी संसार लुटा बैठता है, तो उसे धर्म की सुध आती है। मैं जहाँ जहाँ वेदान्त-मन्दिर थे, सब स्थानों पर पहुँचा और उनकी खोज की। अन्त में पता लगा, कि वह केलिफ़ोरनिया में हैं—वहाँ उनकी पूजा होती है। मैं उड़ता हुआ पहुँचा। वेदान्त-मन्दिर देखकर चित्त प्रसन्न हो गया। मगर वह वहाँ भी न थे। चौकीदार से पूछा, तो मालूम हुआ, कि उन्होंने बस्ती से बाहर एक कुटिया बना रखी है। इस कुटिया का नाम "आनन्द भवन" है। प्रायः उसी में रहते हैं, और ज्ञान-ध्यान में लीन रहते हैं। रात हो गई थी, जब मैं "आनन्द-भवन" में पहुँचा। अन्दर जाते ही उनका प्रशान्त, प्रकाशमय, प्रेम-पूर्ण मुख मण्डल दिखाई दिया। इस समय वे संन्यासी के वेष में थे। मैंने उन्हें बढ़िया से बढ़िया लिबास में देखा था, उस समय वह प्रतापी राजकुमार दिखाई पड़ते थे। मगर इन भगवे वस्त्रों में वह ऐसे तेजस्वी, ऐसे गम्भीर, ऐसे महात्मा दिखाई देंगे, यह विचार न था। वह एक चौकी पर बैठे थे और वेदान्त-विषय पर वार्तालाप कर रहे थे। उनके सामने केलिफ़ोरनियाँ के बड़े बड़े विद्वान् टोपियाँ उतारे, श्रद्धा-भाव से सिर झुकाये बैठे थे, और उनके आत्म-ज्ञान पर चकित हो रहे थे। पश्चिम पूर्व के चरणों में लोट रहा था।

एकाएक उनकी दृष्टि मुझपर पड़ी, तो मुख का रंग और भी चमकने लगा, जैसे कभी कभी बिजली के लैम्प में ज्यादा प्रकाश आ जाता

है। मैं आगे बढ़कर उनके चरणों में गिर पड़ा। इस समय मेरे हृदय में भक्ति-सागर उमड़ा हुआ था। देर तक बातें होती रहीं। यहाँ तक कि रात आधी से अधिक बीत गई, और मैं शाम को मिलने का वादा करके अपने होटल को लौट आया। मगर रात को नींद न आई, उसका स्थान प्रसन्नता ने ले लिया था। प्रातःकाल उठते ही मैंने देवकी को तार भेजा और उसे रूपचन्द के मिल जाने की ख़बर दी। इसके बाद शहर की सैर की। दोपहर को खाना खाया और कुछ आराम किया, यहाँ तक कि शाम हो गई और मैं रूपचन्द के "आनन्द-भवन" की ओर रवाना हुआ। इस समय मेरे पैर ज़मीन पर न पड़ते थे। रूपचन्द के दर्शन की उत्कण्ठा ने उन्हें पर लगा दिये थे। उद्गारों के आकाश में उड़ा चला जाता था। मगर वहाँ पहुँचकर दिल बैठ गया। वहाँ पुलीस खड़ी थी। "आनन्द-भवन" में शोक का सन्नाटा छाया हुआ था। आगे बढ़कर पूछा तो मालूम हुआ कि रात को एक स्त्री की हत्या हो गई है। पुलीस को संदेह है कि यह हत्या रूपचन्द ने की है।

———

१३

ऐ भाई ! यह सुनकर मेरा कलेजा हिल गया। ब्याहवाले घर में दूल्हा की अचानक मौत से जो दशा हो सकती है, वही दशा मेरे हृदय की थी। मुझे इसपर विश्वास नहीं होता था। लोग कानों की अपेक्षा आँखों पर अधिक विश्वास करते हैं। मैं अगर यह घटना अपनी आँखों से देख लेता, तब भी यही समझता, कि यह मेरी आँखों का धोखा है, बुद्धि का विकार है, पर रूपचन्द का दोष नहीं। मैं सब कुछ मान सकता था, मगर रूपचन्द ने हत्या कर डाली है, यह नहीं मान सकता था। मेरे लिए यह असंभव था। पर इससे क्या होता था। मुक़द्दमा शुरू हुआ; अमरिका भर में शोर मच गया। रूपचन्द को केलिफ़ोरनियाँ गये थोड़ा ही समय हुआ था, मगर उन्होंने अपनी मधुर वाणी, पावन-चरित्र, और आत्मज्ञान से लोगों को मुग्ध कर लिया था। समाचार पत्रों में उन्हें भारतीय महात्मा के नाम से याद किया जाता था। न्यूयार्क के प्रसिद्ध समाचार-पत्र ट्रिब्यून (Tribune) ने उनके कई व्याख्यान छापे थे, और बड़ी प्रशंसा के साथ। लोग उन्हें धर्म-गुरु समझने लगे थे। यह समाचार वन की आग के समान

चारों ओर फैल गया। मैंने अपनी तरफ़ से पूरा पूरा यत्न किया, मगर सफलता न हुई। अदालत की कार्य्यवाही देखकर कलेजा धड़क जाता था, आशा की कोई भी किरण दिखाई न देती थी। मुक़द्दमा साफ़ था, उसमें कोई पेच न था। वह स्त्री जिसकी हत्या की गई थी, केलिफ़ोरनियाँ के एक प्रसिद्ध व्यापारी की बेटी थी। उसे रूपचन्द से प्रेम था। इस प्रेम ने उसे उनकी दासी बना दिया था। वह प्रायः उनके आनन्द-भवन में आती-जाती रहती थी। उस दिन भी गई, मगर उदास थी। उसी शाम को यह घटना हुई। रूपचन्द का बयान था, कि मैं भवन से बाहर था, एकाएक मैंने चीख़ की आवाज़ सुनी। दौड़कर अन्दर गया, तो लूसी तड़प रही थी, और उसके कलेजे में छुरी आधी से अधिक उतर गई थी। मैंने आगे बढ़कर वह छुरी उसके कलेजे से निकाल ली। मेरे कपड़े लहू से भीग गये। इतने में पुलीस आ गई, और मुझे पकड़ लिया गया। इसके सिवा मुझे और कुछ भी पता नहीं।

ऐ भाई! मुझे रूपचन्द के बयान पर पूरा पूरा विश्वास था। मेरे पास उनपर संदेह करने का कोई कारण न था। मगर अदालत को इस बयान पर विश्वास न हुआ। महीनों बहस होती रही! आख़िर फ़ैसले का दिन आ गया। उस दिन अदालत दर्शकों से खचाखच भरी हुई थी। लोग अमरिका की सर्व्वोत्तम एक्ट्रेसों को देखने के लिए भी कभी इतने अधीर न हुए होंगे! समाचार-पत्रों के रिपोर्टर कैमरे लेकर आये थे, और रूपचन्द का फ़ोटो लेने के लिए बेचैन थे। मगर रूपचन्द के मुंह पर कोई चिन्ता, कोई आशंका, कोई व्यग्रता न थी, जैसे उनका मुक़द्दमे के साथ कोई सम्बन्ध ही न हो। मैंने उनकी ओर देखा, परन्तु आँखें न मिल सकीं—यह सब मेरी करतूत थी।

इतने में ज्यूरी ने फ़ैसला सुनाया। लोगों के दम रुक गये, जैसे प्राण होंठों तक आ गये हों। चारों ओर निस्तब्धता थी। "जुर्म

साबित है, इसलिये अपराधी को दण्ड दिया जाता है कि उसे गर्दन से रस्सा बाँध कर लटकाया जाये, जब तक कि उसकी जान न निकल जाये।"

मेरे कलेजे पर मानों किसी ने गर्म सुलाख़ रख दी। पैरों तले से धरती खसकने लगी। ऐसा जान पड़ता था जैसे आकाश गिरने को है! एकाएक कोई प्राणी भीड़ को चीरता हुआ आगे बढ़ा, और अदालत के सामने पहुँच गया। जिस तरह नाटक में कोई आश्चर्य्यजनक घटना देखने के बाद उससे भी बढ़कर आश्चर्य्यजनक घटना देखकर आदमी सन्नाटे में आ जाता है, उसी तरह मैं इस आदमी को देखकर सन्नाटे में आ गया—यह देवकी थी।

वह जज के पास पहुँच गई और धीरे से मगर धैर्य्य के साथ बोली, "यह निर्दोष है। हत्या मैंने की है। इसे दण्ड न दो। वह नर-हत्या थी, यह न्याय-हत्या होगी।"

अदालत में शोर मच गया। लोगों की आँखों में आँसू भरे हुए थे। सोना जब गर्म होता है, तो पानी बनकर बह जाता है। यह पानी साधारण पानी न था, सोने और चाँदी का पानी न था, यह दिल के भावों का पानी था। ज्यूरी के मेम्बर चौंक कर खड़े हो गये। सरकारी वकील आश्चर्य्य से माथे पर हाथ फेरने लगा। रूपचन्द मृत्यु-दण्ड की आज्ञा सुनकर न घबराये थे, मगर देवकी के इन बचनों ने उनके होंठ सुखा दिये। वह उसकी ओर इस तरह देखने लगे, जैसे पागल हो गये हों।

अदालत ने पूछा, "तू कौन है?"

"मुजरिम की स्त्री।"

अदालत कुछ देर तक चुप रही और इसके बाद उसने कोर्ट इन्स्पैक्टर से कहा, "गिरफ्तार कर लो। मुक़दमा नया रङ्ग पकड़ने को है।"

यह गिरफ्तारी देवकी की मौत की पूर्व-सूचना थी। मगर देवकी को इसकी परवा न थी। बल्कि वह इस समय ऐसी प्रसन्न थी, जैसे किसी दुर्भिक्ष-पीड़ित मनुष्य को अकस्मात् दबा हुआ ख़ज़ाना मिल गया हो। यह प्रसन्नता उसके मुख से, आँखों से, और हाव-भाव से प्रकट होती थी।

—

१४

ऐ भाई ! देवकी ने अपने आपको मौत के मुँह में देकर अपने पति को छुड़ा लिया। मगर इससे रूपचन्द प्रसन्न नहीं हुए। वह अब प्रति क्षण दुखी रहते थे। वकील ऋण चुकानेवालों की झूठी प्रतिज्ञाओं की तरह बार-बार पेशियाँ भुगतने लगे। अदालत की कार्यवाही नये सिरे से आरम्भ हुई। रूपचन्द चाहते थे, जिस तरह भी हो सके, देवकी को छुड़ा लें। मगर यह आसान न था। देवकी ने अपने आप अपराध स्वीकार कर लिया था। उसने जो बयान दिया, उसमें साफ़ साफ़ कह दिया कि यह हत्या मैंने की है। मेरा पति मुझ से रूठ कर यहाँ चला आया था। मैं उसका वियोग सहन न कर सकी, यहाँ आ गई। मगर पति के सामने आने का साहस न हुआ, दिलों में अन्तर आ गया था। यहाँ आकर मुझे संदेह हुआ, कि लूसी को मेरे पति से प्रेम है। मैं यह सहन न कर सकती थी। मैं अपने प्राण दे सकती थी, मगर पति और पति का प्रेम न दे सकती थी। मुझे ज़हर चढ़ गया, दिल और दिमाग़ दोनों खौलने लगे। मैंने उसे एक दो बार समझाया, मगर उसने मेरी बात पर ध्यान न दिया। बोली, मैं अब इसके बिना रह नहीं सकती। मैं

क्रोध से पागल होकर अपने पति की कुटिया में गई, कि उन्हें उस कुटिला और उसके आचार के विषय में सब हाल कह दूँ। मगर वहाँ पहुँच कर क्या देखती हूँ, कि वहाँ लूसी बैठी है। मेरा पागलपन और भी बढ़ गया। मैंने जोश की हालत में मेज़ से छुरी उठा ली और उस पर वार किया। छुरी कलेजे में उतर गई। अब मेरी आँखें खुलीं, सोचा, मैंने क्या कर दिया। मगर सोचने का समय न था। भगवान् जाने, कैसी पड़े, कैसी न पड़े। मैं जल्दी से बाहर आ गई।

देवकी के इस बयान से अदालत में सनसनी फैल गई। लोगों में धीरे धीरे बातें होने लगीं। कुछ लोग कहते थे, यह बयान बिलकुल सत्य है; इस स्त्री ने अपनी लाज रख ली। कुछ कहते थे, भारतीय स्त्री ने अपने प्राण देकर पति को छुड़ा लिया है, नहीं तो हत्या का दोष इससे कोसों दूर है। रूपचन्द खड़े देखते थे और चुप थे। इस घटना ने उनकी बोलने की शक्ति नष्ट कर दी थी। जिस तरह सूरज की गरमी सरोवर का जल सुखा देती है और उसका तला दिखाई देने लगता है, इसी तरह घोर निराशा ने रूपचन्द के मन की शान्ति नष्ट कर दी थी और उनके मन के आंतरिक भाव दिखाई दे रहे थे—देवकी के लिए हर घड़ी रोते रहते थे, यह उनके हृदय की तह थी। वह अपनी ओर से पूरा पूरा यत्न कर रहे थे, मगर उनके किये कुछ बनता दिखाई न देता था। कैसा दुःखपूर्ण दृश्य था, कि स्त्री मौत के खुले मुँह में जा रही थी और पति सामने खड़ा मुँह ताकता था और कुछ कर न सकता था।

एक दिन बहुत रात गये मैं होटल गया। सब लोग अपने अपने कमरों में जाकर सो चुके थे। मैंने कपड़े उतारे, और लेट गया, पर आँखों में नींद न थी। रह रह कर सोचता था, क्या सचमुच देवकी को फाँसी पर चढ़ना होगा। इस भय से देह के रोंगटे खड़े हो जाते थे, आँखों में पानी आ जाता था। सहसा साथ के कमरे से कुछ बातचीत की आवाज़ आई। इस समय क्या बात हो सकती है। कोई विशेष

मामला होगा, कौतूहल-वश मैंने दीवार के साथ कान लगा दिये। मालूम हुआ, एक स्त्री और पुरुष बातें कर रहे हैं।

पुरुष ने पूछा—"तो तुम्हारा इरादा है कि नहीं? जो कुछ कहना हो साफ़ साफ़ कह दो। मुझे अब इक़रारों में न रखो। मैं चाहता हूँ, जितनी जल्दी हो सके, ब्याह हो जाय।"

स्त्री—"तुम थोड़े दिन धीरज क्यों नहीं धरते? अभी अभी मेरी बहन मरी है। ब्याह होते देखकर लोग क्या कहेंगे? ठठोलियाँ मारेंगे। शहर में रहना कठिन हो जाएगा।"

पुरुष—"लोगों की परवा न करो।"

स्त्री—"परवा कैसे न करूँ? शहर छोड़ कर कहाँ चली जाऊँगी?"

पुरुष—"बहन की मौत का बड़ा दुःख है क्या?"

स्त्री—"तुम पुरुष हो। पुरुषों के हृदय कठोर होते हैं। मगर मैं तो स्त्री हूँ। ऐसी पत्थर-दिल कैसे हो जाऊँ।"

पुरुष—"जैसे हत्या की थी।"

स्त्री—"चुप, कोई सुन लेगा।"

पुरुष—"हिन्दुस्तानी स्त्री बे-गुनाह मर रही है। कभी कभी तो मेरा दिल भी काँप जाता है।"

अन्धकार में आशा-किरण चमक गई। मैं कमरे से बाहर निकल आया। इस समय मैं ऐसा प्रसन्न था, कि आकाश पाताल की सुध न थी। भागा भागा पोलीस के थाने में जा पहुँचा।

दूसरे दिन असली अपराधिन अदालत में पेश हुई। मुक़द्दमे का रङ्ग एक बार फिर बदल गया। यह स्त्री लूसी की सगी बहन थी। पहले पहले उसने अपने बचाव का बहुत यत्न किया, मगर अन्त में पोलीस और अदालत के हथकंडों में आ गई। क़ानून के फ़ौलादी पञ्जों ने उस अभागी को भागने का अवसर न दिया! उसने अपने बयान में अपने अपराध को स्वीकार कर लिया। कहा, कि हम दोनों बहनें

रूपचन्द को चाहती थीं। पहले पहल मुझे यह पता न था कि मेरी बहन को भी रूपचन्द से प्रेम है। कुछ देर बाद जब यह भेद मुझ पर खुला तो मैं बफरी हुई शेरनी की नाईं क्रोध में भर गई, और छोटी बहन से बोली, तू इस हिन्दोस्तानी पादरी का ख़याल छोड़ दे, नहीं तो मैं तेरी बोटियाँ नोच लूँगी। मगर लूसी पर मेरी धमकी का कोई असर न हुआ। पागल और प्रेमी ने किसी की शिक्षा कब मानी है? परिणाम यह हुआ, कि एक दिन अवसर पाकर मैंने उसे उस हिन्दोस्तानी के झोपड़े में मार डाला।"

देवकी छूट गई, अब उस स्त्री पर मुक़दमा चलने लगा। मैंने एक दिन उससे भेंट करने की आज्ञा लेकर पूछा—"क्या मैं एक सवाल पूछ सकता हूँ?"

"क्या मुक़द्दमे के सम्बन्ध में?"

"नहीं उसका मुक़द्दमे से कोई ख़ास सम्बन्ध नहीं।"

"पूछिए।"

"आप दोनों बहनों को उस हिन्दोस्तानी संन्यासी से प्रेम था। क्या वह संन्यासी भी तुम में से किसी एक को चाहता था?"

मालूम होता है, इस सवाल से इसके हृदय के घाव हरे हो गये, सिर झुका कर बोली, "बिलकुल नहीं। वह हम दोनोंमें से किसी की भी परवा नहीं करता था। यही कारण है, कि मैंने अपनी बहन को उसके झोंपड़े में जाकर उसी की छुरी से मारा। और इससे मेरा मतलब एक ही वार से दोनों शत्रुओं का अन्त कर डालना था। मगर भाग्य में यह बदा है, इसका पता न था।"

ऐ भाई! मेरे दिल का बोझ हल्का हो गया, जैसे किसी का ज्वर उतर जाए। मैं रूपचन्द के झोपड़े में पहुँचा। वहाँ रूपचन्द मेरी राह देख रहे थे। मुझे देखते ही उन्होंने अपनी भुजाएँ फैला दीं। यह भुजाएँ मेरे लिए बैकुण्ठ द्वार से कम न थीं। मैं गद्गद् हो गया। मैं समझता था,

मनुष्यजन्म लेना आज सार्थक हुआ। चारों ओर उछलता फिरता था। मुझे यह परवा न थी, कि कोई देखेगा तो क्या कहेगा। मैं अपने पागलपन को खुद प्रकट करना चाहता था। थोड़ी देर के बाद आराम से बैठे, तो मैंने कहा—"आपने हमें तो भुला ही दिया। मुँह देखने को जी तरस गया।"

रूपचन्द ने आसमान की ओर देखकर ठण्डी आह भरी और जवाब दिया—"भगवान् की यही इच्छा थी, तो क्या हो सकता है? अब तो यह कुटिया मन में बस गई।"

"तो क्या आप वापस न चलेंगे?"

"विचार तो ऐसा ही है।"

"और बिचारी देवकी का क्या बनेगा?"

"उस पापिन का मेरे सामने नाम न लो।"

"यह आप क्या कह रहे हैं?"

"उसका नाम सुनकर मेरा हृदय जलने लगता है। उसने अपनी मर्य्यादा पर पानी फेर दिया। वह स्त्री नहीं, कुटिला है।"

मैंने जोश से कहा, "आपको बचाने के लिए उसने अपने आपको जोखिम में डाल दिया था।"

"यह सब सच है। पर पाप का दाग़ दिल के ख़ून से भी नहीं धुलता।"

"तो आपके दिल में गिरह बँध गई?"

"और ऐसी जो कभी न खुलेगी। तुम अब इस विषय में अधिक बात-चीत न करो। इससे मेरे आत्मा को क्लेश होता है।"

"मगर देवकी निर्दोष है।"

रूपचन्द ने उत्तर न दिया। उनके मुंह पर से जान पड़ता था, कि इससे उनके हृदय पर कुछ प्रभाव नहीं हुआ। मगर मैंने सारी घटना उनके सामने खोल दी, और अपनी भूल स्वीकार की। तब उनके मुख

का रङ्ग बदल गया। आँखों में आँसू लहराने लगे। कड़ी धूप के बाद मीठे जल की वृष्टि हुई। रोते रोते बोले, "हरिसेन! तब मैंने उससे सरासर अन्याय किया। वह दो तीन बार यहाँ आई थी, पर मैंने झिड़क दिया। पता नहीं उस समय अपने मन में क्या कहती होगी। अब मेरे हृदय में उसके विषय में रत्ती भर भी शङ्का नहीं। मैं उसे अपराधिनी समझता था, परन्तु यह विचार न था, कि अपराध मेरा ही है। चलो उससे क्षमा माँगूँगा।"

हम दोनों चलने को तैयार हुए। इतने में देवकी सामने से आती दिखाई दी। उसे देखकर मेरे आँसू निकल पड़े। वह ऐसी दुबली-पतली हो गई थी, जैसे शिशिर ऋतु में फूल की शाखा सूख जाती है। रूपचन्द ने उसे देखते ही बाँहें फैला दीं। देवकी ख़ुशी से पागल होकर आगे बढ़ी, परन्तु पैरों में गिर कर बेहोश हो गई। पण्डितजी ने उसे उठाकर गले से लगा लिया, और रोने लगे। यह आँसू आनन्द के भी थे, दुःख के भी; अभिमान के भी, लज्जा के भी।

उस रात रूपचन्द की कुटिया, 'आनन्द-भवन' का कुछ और ही रङ्ग था। चारों ओर आनन्द बरस रहा था, हम सब को खोई हुई शान्ति मिल गई थी। मैं वहाँ कुछ दिन ठहरा। उन दिनों की सुख-स्मृति अब भी हृदय में हलचल मचा देती है। ऐ भाई! मैंने कई शहर देखे हैं और कई शहर देखूँगा, मगर जो सुख-संगीत जो स्वर्गोपम-मोहनी जो आध्यात्मिक माधुरी उस 'आनन्द-भवन' में थी वह न कहीं और मिली है न मिलेगी। वहाँ प्रेम का पवन चलता था, स्नेह के फूल खिलते थे। देवकी और रूपचन्द के पवित्र भावों ने मेरे जैसे विलासी, स्वार्थी, कपटी, कामी पुरुष का हृदय-परिवर्तन कर दिया। मानो यह सारी घटना मेरे "परिवर्तन" ही के लिए थी। अब वह वहाँ नहीं, भारत चले गये हैं और कश्मीर में वैरी नाग चश्मा के तट पर रहते हैं। वहाँ भी उन्होंने एक कुटिया बना ली है, और उसका नाम

भी "आनन्द-भवन" ही रक्खा है। मेरे भारत जाने का सबब वही कुटिया है। मैं उसके दृश्य देखने के लिए इस प्रकार तड़प रहा हूँ जिस प्रकार मछली जल के लिए तड़पती है। मैंने अपनी जन्मभूमि आज तक नहीं देखी। परन्तु माता कितने प्यार, कितने आदर, कितने अभिमान की चीज़ है, इसे अनुभव करता हूँ। वही मातृ-भूमि जिसमें मेरे बाप-दादा पैदा हुए, खेले, बुड्ढे हुए, मर गये। वही धरती जहाँ मदनमोहन ने बाँसुरी बजाई, पशु चराये और बाल-क्रीड़ा की; राम ने बाण चलाये और राक्षसों से पृथ्वी साफ़ की। आज मैं उसी धरती के दर्शन करने जाता हूँ। आज भूला हुआ बालक अपनी माता के चरणों में सिर रख कर रोने चला है। मैं समझता हूँ मेरी जन्म-भूमि बड़ी पवित्र, बड़ी रमणीक, बड़ी सुन्दर और शस्यश्मामला होगी, परन्तु मैं जब इन सारे गुणों को एक स्थान पर इकट्ठा करता हूँ, तो मेरे सामने "आनन्द-भवन" का चित्र आ जाता है। मेरी कल्पना इससे परे नहीं जा सकती। मैं समझता हूँ, भारतवर्ष भी एक बड़ा आनन्द-भवन होगा। वहाँ प्रेम बसता होगा, सुख खेलता होगा, प्रकाश नाचता होगा। वहाँ हर एक पुरुष रूपचन्द होगा, हर एक स्त्री देवकी होगी और मेरे जैसा स्वार्थी कोई भी न होगा।

१५

यह कहते कहते हरिसेन ने सिर झुका लिया। नादान बच्चे के हृदय में जन्म-भूमि का प्रेम किस तरह उत्पन्न होता है, यह मैंने पहली बार जाना। बाहर सुनील महासागर गरज रहा था, अन्दर मेरे हृदय में सहस्रों विचार-तरंगें उठ रही थीं। इन विचारों ने मेरा मुँह बन्द कर दिया। मैं कुछ देर अवाक् बैठा रहा। इसके बाद सिर उठा कर हरिसेन की ओर देखा। इस समय वह मुझे कितना अपने निकट, कितना अपने समीप दिखाई देता था। मैंने प्रेम भरे स्वर से कहा—"हरिसेन!"

हरिसेन ने मेरी ओर आँखें उठाईं। उनमें मन के भाव बैठे थे। उसने मुझे "स्वदेश-बन्धु" कहा, और इससे अधिक कुछ न कह सका।

जहाज रात के अन्धकार में तेज़ी से चल रहा था, हम अपने :रे देश के निकट पहुँच रहे थे, परन्तु मेरे कानों में हरिसेन की शिक्षा-प्रद आत्म-कथा के अमर शब्द गूँज रहे थे।

———